महात्मा प्रभु आश्रित

॥ ओ३म् ॥

जीवन यज्ञ

महात्मा श्री प्रभु आश्रित जी महाराज

—प्रकाशक—
प्रयाग निकेतन
जवाहर नगर, दिल्ली-७

॥ ओ३म् ॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥
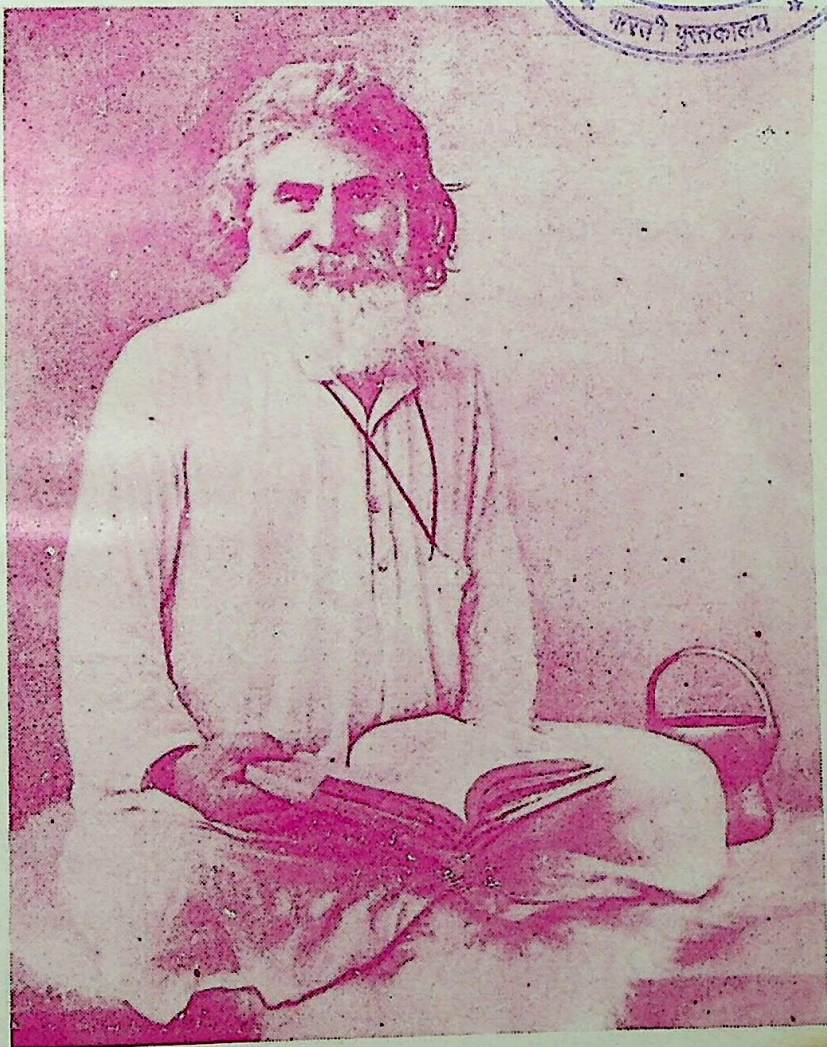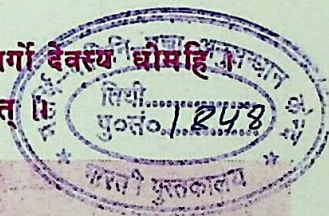
श्री स्वामी प्रभु आश्रित जी महाराज

॥ ओ३म् ॥

जीवन यज्ञ

भूमिका

श्रीयुत् पूज्यपाद स्मरणीय श्री महात्मा प्रभु आश्रित स्वामी जी महाराज फाल्गुण १६५२ में २०० दिन के व्रत में सुन्दरपुर कुटिया में थे। एक दिन सहसा उनके मन में विचार आया कि 'प्रभु आश्रित' नाम तो रख रखा है, इसको अभी तक सार्थक नहीं बनाया। लोगों के आश्रित बन रहे हो। उठो, सर्वस्व त्याग कर अज्ञात स्थान पर चले जाओ, जहां कोई परिचित न हो। वहां ही नाम सार्थक हो सकेगा और 'प्रभु आश्रित' पूरे बन जाओगे।

उस पवित्र विचार को क्रियात्मक रूप देने का उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया। जो कुछ भी अपने पास था, वस्त्र अन्य पदार्थ तथा घड़ी आदि, सब दान कर दिया। स्वंस्व त्याग का वह समय ऐसा अद्भुत था कि वाजश्रवा ऋषि की याद ताजा हो गई। रोहतक स्टेशन पर जब श्री महाराज जी को विदा करने को जनता पहुंची, और थोड़ी देर में जब इंजन ने सीटी बजाई, और गाड़ी गति करने लगी, तो अनेकों नेत्रों से अश्रु की धाराएं बह निकलीं। राम का बनवास यथार्थ में दृष्टिगोचर हो गया। हिमालय की पुनीत कन्दिराओं में किसी ऋषि मुनि योगी तपस्वी के दर्शन का और १०० दिन पर्यन्त निवास का सुअवसर मिलेगा, श्री महाराज जी की तो ऐसी धारणा थी। परन्तु सत्संग प्रेमियों को वियोग की एक-एक घड़ी भार प्रतीत होने लगी।

उस समय श्री महाराज जी के कनिष्ठ पुत्र पं० लखपति जी शास्त्री ने पिता से विनय की—भगवन्! आपने मेरे दो भाइयों को अपनी चलाचल सम्पत्ति का दाय भाग दिया था, परन्तु मुझे दाय भाग में अभी तक कुछ नहीं मिला।

पिता—प्यारे पुत्र ! तुम वेद पाठ किया करते हो ।

प्रियं मा कृणु देवेषु, प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यतः उत शूद्रे उतार्ये ॥
अथर्व० १६-६२-१

अर्थ—हे प्रभो ! मुझे देवों में (ब्राह्मणों में) प्यारा करो, मुझे राजाओं में प्यारा करो । सब देखने वालों का प्यारा करो, शूद्र में भी और आर्य में सब में मुझे प्यारा बनाओ ।

तुम ने इस मन्त्र को पढ़ा, इसे कैसे समझा है ?

सर्वप्रिय होना असम्भव

पुत्र—मन्त्र तो पिता जी पढ़ा है, प्रिय भी बहुत लगा परन्तु यह असः सा लगा कि ऐसा कौन होगा अथवा हो सकता है अथवा हुआ होगा जो स प्रिय लगे । देवताओं, विद्वानों, नेताओं, ब्राह्मणों, राजाओं, क्षत्रियों, वैश्यों शूद्रों को—आज तक कोई ऐसा उदाहरण नहीं हैं । सत् युग में राजा हरिश्च हुये सत्यवादी । रोहतास के शव के दाह कर्म के समय उसने उसकी माता से पैसे दिये दाह करना स्वीकार न किया । अपने पुत्र के लिए इतनी निष्ठु निर्दयता ! आखिर माता को तो क्लेश पहुंचा ही होगा । भगवान् राम में हुये, सब को प्रिय लगे । आखिर कैकेयी ने उन्हें बनवास दे ही दिया । वि षण रावण का सहोदर भ्राता था, भक्त था । भाई का प्यारा न बना । द्वाप जहां विद्वानों से भरा पड़ा था, वहां कितने उपद्रव और सङ्कट उत्पन्न कलियुग तो इस मन्त्र का सर्वथा उलटा ही आचरण में देखा जाता है । प्राकृतिक उदाहरण भी देखने में नहीं आता । सूर्य भगवान् का कितना उ है, परन्तु चमगादड़ और उल्लू को तो प्रिय नहीं लगता ।

पिता—प्यारे पुत्र ! यह तुम ठीक कह रहे हो । यह दृष्टि सांसारिक दृष्टि है । वेद भगवान् का आशय अन्तर दृष्टि से देखने और अन्तर्मुख विचारने से ठीक-ठीक समझ में आ सकता है ।

जीवन का वास्तविक लाभ—ऋभु ऋषि का उपदेश

पूर्वकाल में ऋभु ऋषि घूमते-घूमते पुलस्त्य ऋषि के आश्रम के सर्मन्तु पहुंचे । वहां पुलस्त्य का पुत्र निदाघ वेदाध्ययन कर रहा था । निदाघ ने ऋषि को देखकर बड़ी श्रद्धा से नमस्कार की । ऋषि को उस विद्यार्थी को अपि जान कर दया आ गई और उसे उपदेश देने लगे ।...."इस जीवन का वा लाभ आत्म-ज्ञान प्राप्त करना है । यदि वेदों को सम्पूर्णतया रटा जाये तत्व का ज्ञान न हो तो वह किस काम का है ?"

वेद भगवान् भी कहता हैं :—

ऋचे अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते ॥

ऋक्० १-१६४-९, अथर्व० ९-१०-१८

अर्थ—(ऋचः) ऋग्वेदादि चारों वेदों की ऋचाओं का प्रतिपाद्य विषय
अथवा अर्चनीय परम पूजनीय ईश्वर के (यस्मिन् परमे) जिस परम (व्योमन्)
शेष रक्षा में (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् गण एवं दिव्य पदार्थ, सूर्य, चन्द्र
ादि (निषेदुः) आश्रय लेते है। (यः) जो पुरुष (तत् न वेद) उसका ज्ञान
हीं करता, (ऋचा) ऋग् मन्त्रों से (किम् करिष्यति) क्या फल प्राप्त करेगा ?
र (ये इत् तत् विदुः) जो विद्वान् उस परम तत्व को जान लेते हैं (ते) वे
इमे सम् आसते) लोग मोक्ष में स्थान प्राप्त करते हैं। (जयदेव भाष्य)

अर्थात् तत्व ज्ञान की प्राप्ति के बिना जीवन निरर्थक है।

साधन

पुत्र—यह तो ठीक है कि जीवन का वास्तविक लाभ आत्म-ज्ञान की प्राप्ति
रना है परन्तु प्रभु ने जो यह शरीर दिया है उसका पालन-पोषण करना और
सका नीरोग रखना भी आवश्यक है। उसके लिये तो सारे कार्य व्यवहार करने
ते हैं।

पिता—मनुष्य को शरीर मिला ही इसी लिये है। 'शरीर' का शब्द
ी+र' से बना है। 'श्री' का अर्थ भी यही है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और
का अर्थ है दिलाने वाला। अर्थ का पैदा करना तो जरूरी है परन्तु धर्म सहित
ाना (उपार्जन करना) और मोक्ष लक्ष्य रखकर कामनाओं में व्यय करना।
के लिए ज्ञान की आवश्यकता है, बिना ज्ञान कामनाएं और अर्थ संसार में
ाने वाले बन जाते हैं और ज्ञान सहित इनका प्रयोग दुःखों से छुड़ाने वाला
जाता है। शरीर और आत्मा के भेद को न जानना यही अविद्या है, अज्ञान
। अब तुम इस प्रकार समझो—

रीर की रचना

इस शरीर में क्या-क्या है ? चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वचा, वाणी,
त, पाद, गुदा, उपस्थ इन्द्रिय इन दस इन्द्रियों से मानव सारे कार्य करता है।
रन्तु यह सब प्राण के सहारे चलते हैं और मन बुद्धि के आधीन हो कर कार्य
रते हैं। सब का कर्त्तव्य कार्य और सब का आहार पृथक्-पृथक् है। क्षुधा और
पिपासा न मन को लगती हैं, न बुद्धि को, न इन्द्रियों को। तुम देखते हो, जब
ा सताती है तो प्राण शुष्क होने लगते हैं, मनुष्य कहता है 'मैं मरा' मेरे प्राण
िकलते हैं' जब मुख में जल पड़ गया तो चेतनता आ गई। तो क्षुधा पिपासा तो
णों को लगती है। यह जो कह दिया कि 'मैं मरा' 'मैं' तो आत्मा है न मन है

न बुद्धि न शरीर। आत्मा मरती नहीं। यही अविद्या है और स्वस्थता और तृप्ति यह मन के धर्म हैं।

पुत्र—यह पढ़ सुन कर भी, मस्तिष्क को जच कर भी विश्वास नहीं जमता और पुत्र-परिवार की जिम्मेदारी बड़ी भारी जचती है, वरन् वह भूखे मर जावें, कहां से लावें ?

संसार से वैराग—कर्त्तार में अनुराग

पिता—कपिल मुनि का अपनी माता देवहूति को उपदेश—कपिल मुनि ने अपनी माता देवहूति को उपदेश किया था कि इस देह में अस्थि, मज्जा, मांस, रक्त आदि अपवित्र वस्तुओं के अतिरिक्त और तो कुछ है नहीं। ऐसे घृणित देह में आसक्त होकर प्राणी नाना प्रकार के अनर्थ करता है। फल यह होता है कि बड़े कष्ट से उसकी मृत्यु होती है। मृत्यु के पश्चात् यमदूत उसे नाना प्रकार की भीषण यातनायें देते हैं, अनेक योनियों में घुमाते हैं। कदाचित् भगवान् की कृपा से वह इस लोक में मनुष्य योनि में जन्म पाता है। यहां भी गर्भ में दुख ही दुख हैं। बाल्यकाल पराधीनता, विवशता के कष्टों से भरा है, और युवावस्था में काम, क्रोध आदि विकार मनुष्य को अन्धा कर देते हैं। वह नाना चिन्ताओं में बराबर जलता रहता है। वृद्धावस्था तो दुख रूप है ही। इस प्रकार यह समस्त जीवन क्लेश पूर्ण है। जब बराबर विचार करने से सत् **कर्मों के पुण्य प्रभाव से वैराग का चित्त में उदय होता है तब मनुष्य इस संसार के दुःख को समझ पाता है, भगवान् के चरणों में अनुराग होता है, भगवान् के नाम का जप, उनकी मंगलमयी लीलाओं का ध्यान, उनके दिव्य गुणों का कीर्तन करने से हृदय शुद्ध हो** जाता है। निष्काम भक्ति के द्वारा भगवान् में चित्त लगाए रहने से जीव को बन्धन में रखने वाले पांचों कोष धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं। भक्ति से निर्मल चित्त में ही ज्ञान का उदय होता है। बिना भगवान् की शरण लिए हृदय शुद्ध नहीं होता। इसलिये मनुष्य को बड़ी सावधानी से संसार के दुख रूप भोगों से मन को हटा कर भगवान् के चरणों में लगाना चाहिये। यह भगवान् कपिल के उपदेश का बहुत ही संक्षिप्त तात्पर्य है।

पुत्र—पिता जी ! हम लोग गृहस्थी हैं। कितनी बार कई प्रकार के संकट आ जाते हैं। बीमारी व्याधियां रोग बाल बच्चों को आ सताती हैं। हम अधीर हो जाते हैं। दवाइयां भी करते हैं और जप प्रार्थना भी करते हैं। हम अपने आपको समर्पण तो नहीं कर सकते। हमें अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए भगवान् से सकाम भक्ति करनी पड़ती है। निष्काम कैसे करें ?

पिता—हां पुत्र ! तुम्हारी बात सत्य है, परन्तु प्रभु देव तो महान् उदार तथा दयालु देव हैं। यह सब भूमियां हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्गों का ज्ञान कराया जाता है, सिखाया जाता है। जिनके पूर्व जन्मों के बलवान् शुभ कर्म तथा संस्कार होते हैं उनकी सीधी निवृत्ति मार्ग में रुचि हो जाती

है और जिनके निर्बल प्रबल संस्कार मिले जुले होते हैं उनको गृहस्थ आश्रम में जाना पड़ता है और गृहस्थ आश्रम में प्रवृत्ति मार्ग रुचिकर होता है और फिर वह प्रबल संस्कारों के प्रताप से वानप्रस्थाश्रम में बड़ी चाह से चले जाते हैं, वहां निवृत्ति मार्ग में उनकी रुचि हो जाती है और जिनके ऐसे संस्कार नहीं होते, वह गृहस्थ में ही रह जाते हैं। वेदों में भी तुम ने कई स्थानों पर पढ़ा होगा, वहां भी धन सम्पत्ति कीर्ति शोभा पशु पुत्र परिवार की वृद्धि के लिए, प्राप्ति के लिए प्रार्थनायें आती हैं। और मुक्ति के लिए भी और निरोगता—दुखों संकटों से दूरी के लिए भी भक्त भगवान् की आराधना करते हैं, आज्ञा है।

गीता में तो स्वयं तूने कई वार कथा रूप में भी सुना होगा—

चार प्रकार के भक्त—उनके लक्षण

चतुर्विधाः भजन्ते माम् जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ गीता ४-१६

अर्थात्, हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म करने वाले! अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु और ज्ञानी ऐसे चार प्रकार के भक्त जन मुझको भजते हैं। इन सबको भक्त ही गिना गया है। इन सब में निम्न श्रणी का भक्त अर्थार्थी है, उससे ऊंचा आर्त्त, आर्त्त से ऊंचा जिज्ञासु और उससे ऊंचा ज्ञानी।

भोग और ऐश्वर्य आदि की इच्छा को लेकर जो भगवान् की भक्ति में प्रवृत्त होता है उसका हृदय भगवद्भक्ति की ओर गौण और पदार्थों की ओर मुख्य रहता है। क्योंकि वह पदार्थों के लिये भक्ति करता है न कि भगवान् के लिए। वह भगवान् को धनोपार्जन का एक साधन समझता है। फिर भी भगवान् पर विश्वास करके धन के लिये भजन करता है इसलिए वह भक्त कहलाता है। भगवान् तो अपने सभी भक्तों को उदार मानते हैं।

उदाराः सर्वं एवंते। गीता ७-१८

अर्थार्थी और आर्त्त—उदार—यह कैसे ?

अर्थार्थी और आर्त्त उदार कैसे ? भगवान् इस दृष्टि से भी उन्हें उदार कहते हैं कि अपने से मांगने वालों और दुःख निवारण चाहने वालों को भी, कि वह मेरा पूरा विश्वास करके मुझे भी भजते हैं, फल-प्राप्ति को मेरे विश्वास पर छोड़कर **मेरा आश्रय पहले लेते हैं**, तब पीछे मैं उन्हें भजता हूं।

दूसरा, जिसे भगवान् स्वाभाविक अच्छे लगते हैं और जो भगवान् के भजन में स्वाभाविक ही प्रवृत्त होता है किन्तु सम्पत्ति वैभव आदि जो उसके पास हैं, उनका जब नाश होने लगता है अथवा शारीरिक कष्ट आ पड़ता है, तब उन कष्टों को दूर करने के लिए भगवान् को पुकारता है। वह आर्त्त भक्त अर्थार्थी की तरह वैभव और भोगों का संग्रह तो नहीं करना चाहता परन्तु प्राप्त वस्तुओं

के नाश और शारीरिक कष्ट को नहीं सह सकता इसलिये उसमें उसकी अपेक्षा कामना कम है।

जिज्ञासु भक्त तो न वैभव चाहता है न योगक्षेम की परवाह करता है। वह तो केवल एक भगवत् तत्व को ही जानने के लिए भगवान् पर ही निर्भर होकर उनका भजन करता है और ज्ञानी सर्वथा निष्काम होता है।

इस श्लोक में एक विलक्षण और विचारणीय बात यह है कि भगवान् ने यहां ज्ञानी, जिज्ञासु, आर्त्त और अर्थार्थी क्रम से न कहकर आर्त्त पहले, जिज्ञासु दूसरा, अर्थार्थी तीसरा और ज्ञानी चौथा बतलाया। क्या तुम इससे कोई बात समझे?

पुत्र—यह तो छन्द की पूर्ति के लिए शब्द आगे पीछे लगाने पड़ते हैं, और कोई विशेषता इसमें क्या हो सकती है?

पिता—पुत्र! यही कोरे ज्ञानी पंडितों और भक्ति-रत अनुभवियों के भाव में अन्तर है। तुमने बाह्य दृष्टि से विद्या के बल पर कह दिया और एक श्रद्धालु भक्त अन्तर्दृष्टि से उस गुह्य विद्या के बल यों समझता है। यहां आर्त्त और अर्थार्थी दोनों के बीच में जिज्ञासु को रखने में भगवान् का यह एक विलक्षण तात्पर्य मालूम देता है कि जिज्ञासु में जन्म-मरण के दुःख से इच्छा दुःखी होना और अर्थों के परम अर्थ परमात्मा तत्व की प्राप्ति की यह दोनों हैं। इस प्रकार आर्त्त और अर्थार्थी दोनों के आंशिक धर्म उसमें आ जाते हैं। इसी तरह आर्त्त और अर्थार्थी भक्तों में आर्त्तनाश और पदार्थ-कामना के अतिरिक्त मुक्ति की इच्छा भी रहती है, इसलिये भगवान् से जो कष्ट निवृत्ति तथा सांसारिक भोगों की प्राप्ति की कामना की गई है उस कामना के दोष को समझने पर उनके हृदय में ग्लानि और पश्चात्ताप भी होता है। अतः आर्त्त और अर्थार्थी इन दोनों में से कोई तो जिज्ञासु होकर भगवान् को तत्व से जान लेते हैं और कोई भगवान् के प्रेम के पियासे होकर भगवत्प्रेम को प्राप्त कर लेते हैं एवं अन्ततोगत्वा वह दोनों सर्वथा आप्तकाम होकर ज्ञानी भक्त की श्रेणी में चले जाते हैं।

साधु दर्शन संग का फल—बाल्मिक ऋषि की कथा

पिता—हां पुत्र! यह भी एक प्रसिद्ध बात है। इसका कारण भी मोह आसक्ति है। तुमने बाल्मिक ऋषि की कथा सुनी होगी। बाल्मिक ऋषि का जन्म नाम रत्नाकर था। अंगरा गोत्र में उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण था। लुटेरों डाकुओं के संग से वह भी क्रूरहृदय डाकू हो गया। धर्म कर्म तो कभी किया नहीं था। बालकपन से ही कुसंग में पड़ने से विद्या भी नहीं प्राप्त कर सका था। वन में छिपा रहता और उधर से आने-जाने वाले यात्रियों को लूट मार कर जो कुछ मिलता उससे अपने परिवार का भरण पोषण करता। संयोगवश एक दिन नारद जी उधर से आ निकले। रत्नाकर ने उन्हें भी ललकारा। देवर्षि ने निर्भय होकर बड़े स्नेह से कहा, 'भैया! मेरे पास धरा ही क्या है? परन्तु

तुम प्राणियों को क्यों व्यर्थ मारते हो ? जीवों को पीड़ा देने और मारने से बड़ा दूसरा कोई पाप नहीं है। इस पाप से परलोक में प्राणी को भयंकर नरकों में सड़ना पड़ता है।'

जब अकारण कृपालु श्री हरि दया करते हैं, जब अनेक जन्मों के पुण्यों का उदय होता है, जब जीव के कल्याण का समय आ पहुंचता है, तभी उसे सच्चे साधु के दर्शन होते हैं।

रत्नाकर पहले जिसे लूटता था, वह वेचारा रोता, गिड़गिडाता, भयभीत होता। आज उसने एक अद्‌भुत तपस्वी साधु देखा था जो तनिक भी नहीं डरा था। जिसने अपनी प्राण रक्षा के लिए एक शब्द भी नहीं कहा, अपितु उल्टा रत्नाकर को उपदेश दे रहा था। क्रूर डाकू पर प्रभाव पड़ा। उसके निष्ठुर हृदय में रोने, कल्पने वालों का गिड़गिड़ाना दया उत्पन्न नहीं करता था, किन्तु इस साधु की निर्भयता और स्नेह पूर्ण बाणी ने उसे प्रभावित कर दिया। वह बोला—'मेरा परिवार बड़ा है, मैं यदि लूट कर धन न ले जाऊं तो वह भूखा मर जावे।'

देवर्षि ने कहा—'भाई ! तुम जिनके भरण पोषण के लिये इतना पाप करते हो, वह तुम्हारे इस पाप में भाग लेंगे वा नहीं ? यह उनसे पूछ आओ, भय मत करो, मैं भाग कर कहीं न जाऊंगा, विश्वास न हो तो मुझे एक वृक्ष से बांध दो।'

नारद जी को वांध कर वह घर गया। उसने गृहवासियों से सब से पूछा, सबने एक ही उत्तर दिया, हमारा कोई सम्बन्ध (मतलब) तुम्हारे पाप से नहीं, तुम्हारा कर्त्तव्य है हमारा पालन पोषण करना। रत्नाकार सुनते ही शोकातुर हो गया कि हा ! जिस के लिए रक्त स्वेद एक करता, शीतोष्ण वर्षा आंधी में जंगलों में छिपा रहता, कितने प्राणियों का गला काट देता, उन की चीखो पुकार, आह जारी और गिड़गिड़ाने की परवाह न करता, आज उनका यह उत्तर हैं !

एक क्षण में उसके मोह का सारा बन्धन टूट गया। रोता हुआ वन में आया। ऋषि के बन्धन काट कर उनके चरणों में गिर पड़ा, वह छटपटाता हुआ क्रन्दन करने लगा—"मेरे जैसे अधम का उद्धार कैसे होगा ?"

देवर्षि ने उसे उपदेश किया, नाम दान दिया। वह तपस्या में ऐसा लगा कि उसे सुध बुध न रही। दीमक (बाल्मिक) ने उसके शरीर पर घर बना दिये। दीमक से ढक गया। वर्षो बीत गये, नेत्रोन्मीलन नहीं किया। उठा ही नहीं।

अन्त में प्रभु कृपा से ब्रह्मा जी इस तपस्वी के पास आये। उन्होंने दीमक को दूर किया और उसे बाल्मिक नाम से पुकारा। उसको अन्तःकरण की शुद्धि और सब आत्माओं को अपनी आत्मा जानने की बुद्धि प्राप्त हो गई। एक दिन उसके सामने एक व्याध ने क्रौंच पक्षी के मिथुन में से एक को मार दिया। तब दया के कारण व्याध को शाप देने में उसके मुख से श्लोक निकला।

तो सार यह, पुत्र, कि मोह के कारण मनुष्य परमार्थ बुद्धि को छोड़ स्वार्थ ग्रस्त हो जीवन भ्रष्ट कर देता है।

पुत्र—तब तो लोग सच्चे हैं। बाल्मिक पर प्रभु कृपा हुई तब ही तो वह बदल सका। हम पर भी जब प्रभु कृपा हो तो हम भी बदल सकें। ऐसा समय आवे तो ?

प्रभु कृपा वास्तविक कर्मफल है

पिता—प्रभु कृपा को भी तुम तनिक विचार से समझो। जन्म-जन्मान्तर के पुण्य कर्मों के फलस्वरूप बाल्मिक को देवर्षि के दर्शन तथा भेंट हुई। यह प्रभु कृपा हो गई। उसे अनुभव हो गया कि पाप कर्म का फल पाप करने वाला भोगेगा। सब प्राणी अपने कर्म के जिम्मेदार आप हैं। आगे तो बाल्मिक जी के अधिकार में था कि चाहे वह फिर मोह में ग्रस्त रह जाते। चाहे उन्होंने अपने कल्याण के लिये पग आगे बढ़ाया। प्रभु कृपा तो पहले पुण्य कर्मों के फलस्वरूप उसके संस्कारों में जागृति करना है। फिर जब मनुष्य जाग कर सो नहीं जाता और आचरण करने तत्पर हो जाता है, तब प्रभु उनके इस नये कर्म में सहायता करते हैं, वरन् नहीं।

प्रभु कृपा क्या है ?

पूर्व संस्कार पुण्य के मनुष्य को सत्संग अथवा महापुरुषों के दर्शनार्थ अपनी गुप्त प्रेरणा शक्ति से बांध कर ले जाते हैं अथवा उसको बांध कर ले आते हैं। वहां पर जो कृपा उन से अमृतोपदेश रूप से प्राप्त होती है, वह कृपा प्रभु कृपा ही होती है और अग्नि की चिंगारी की तरह अन्दर लग जाती है। इसे आध्यात्म अग्नि अथवा धर्म अग्नि कहते है।

यदि मानव इस अग्नि को (कृपा को) अपने भीतर धारण करे, जगाय रखे, तो जिस प्रकार अग्नि अपने पास की चारों ओर की वायु को खींच कर सूक्ष्म करके ऊपर ले जाती है और दूसरी वायु को फिर खींच लेती है और उसे भी ऊपर पहुंचा देती है, इसी प्रकार निरंतर वह अपनी समीप की वायु को खींचती और ऊपर बराबर चढ़ाती रहती है, ऐसे ही वह कृपा अन्दर सुरक्षित रखने से प्रभु की और कृपाओं को खींचती चली जाती है और मानव जीवन को ऊपर-ऊपर उठाए जाती है और प्रभु भक्त बना देती है। तब उसकी वह अवस्था हो जाती है जिसे अथर्ववेद के १-२०-४ मंत्र ने कहा है—

न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन।

प्रभु के मित्र को कोई मार अथवा जीत नहीं सकता।

□

ओ३म्

दूसरा सर्ग—भक्ति में शक्ति

क्षण की भक्ति भी रंग लाती है

पुत्र—पिता जी ! प्रभु देव तो बड़े दयालु हैं। माता-पिता की तरह सब जीवों के लिये उनका दरवाजा खुला है। परन्तु कितने ही लोग जप-तप भक्ति-भजन-कीर्त्तन करते देखे गये हैं, उनकी आत्माएं तो इतनी ऊंची नहीं देखी गईं, फिर क्या कारण होता होगा ? परमात्मा की तो थोड़ी भक्ति भी रंग लाती है, जैसे गीता में कहा :—

अणुरप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ।

ईश्वर की थोड़ी आराधना भी आत्मा के बल को बढ़ाती है। वेद तो इस से भी स्पष्ट कहता है :—

कदु प्रचोतसे महे वचो देवाय शस्यते । तदिद्धस्य वर्धनम् ।।

साम० पू० प्र० ३-१, दशती ४ म० २

बड़े भारी ज्ञानवान् इष्ट देव इन्द्र के लिये कुछ भी, तुच्छ सा भी वचन स्तुतिरूप में कहा जाय, वह ही इस वक्ता के लिये वृद्धिकारक होता है।

पिता—पुत्र ! प्रभु तो सर्वान्तिर्यामी हैं। जप, तप, भक्ति, भजन, कीर्तन का सम्बन्ध लोगों से तो नहीं है। मनुष्य जो जप, तप, भक्ति करता है अपने ही लिये तो करता है, लोगों के लिए तो नहीं करता। जब मन-बुद्धि आत्मा का साथ देकर प्रभु ध्यान में मग्न न हो, तो प्रभु फल किसको देवें ?

सिद्धान्त की बात

सिद्धान्त की बात तुम यूं समझो। जड़ की पूजा करने से चाहे मन-बुद्धि एक होकर भी लग जाए, तो जड़ में आशीर्वाद या फल देने की सामर्थ्य नहीं, तो भी जीवात्मा को लाभ न होगा। और यदि पूजा तो चेतन की करें, परन्तु करें जड़-बुद्धि से, मन विषयों में दौड़ा रहे, फिर वह चेतन प्रभु आशीर्वाद और फल किसको दें ? प्रभु-भक्ति, जप-तप तो अन्तःकरण की शुद्धि के लिए किया जाता है। जब अन्तःकरण साफ नहीं तो फल कैसे पावें ?

विश्वामित्र ऋषि का नाम तो तुम जानते हो। उनकी कथा भी तुमने सुनी होगी। कितने जप-तप और यज्ञ करने वाले थे। और इतनी सामर्थ्य और विद्या प्राप्त थी कि नई सृष्टि रच लेते थे। तब भी जब-जब वशिष्ठ ऋषि के पास जाते वह देखते ही कह देते, "आइये राजर्षि !" तो सख्त क्रोध में आ जाते।

नरक के द्वार

तपस्या में, साधना में, भगवान् के भजन में जीव के कल्याण के जितने मार्ग हैं उन सब में काम, क्रोध और लोभ ही सबसे बड़े बाधक हैं। यही तीनों नरक के द्वार हैं। कहा भी है :—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

कोई कितना ही बुद्धिमान्, विद्वान्, तपस्वी क्यों न हो, यदि काम, क्रोध, लोभ में से एक के भी वश में हो जाता है, तो उसके विद्या, बुद्धि और तप का कोई अर्थ नहीं। यह तीनों विकार बुद्धि को मोह में डाल देते हैं और बुद्धि-भ्रम से जीव का नाश हो जाता है।

विश्वामित्र ब्रह्मर्षि कब बने

विश्वामित्र जी जैसा महान् तप कदाचित् ही किसी ने किया हो। किन्तु अनेक बार काम, क्रोध अथवा लोभ ने उनके बड़े कष्ट से उपार्जित तप का नाश कर दिया और जब उनको अपने जीवन में बार-बार असफलता होने का कारण समझ में आ गया, तीनों विकारों की नाशक शक्ति को पहचान लिया, तब उन्होंने भगवान् का आश्रय लेकर इन तीनों को सर्वथा त्याग दिया। उनके आश्रम में प्रत्येक पर्व के समय रावण के अनुचर मारीच और सुबाहु राक्षसी सेना लेकर चढ़ आते और अस्थि मांस रक्त मूत्र आदि अपवित्र वस्तुओं की वर्षा करके यज्ञ को दूषित कर देते। महर्षि विश्वामित्र इन राक्षसों के उपद्रव से यज्ञ कर नहीं पाते थे। इतने पर भी शाप देकर राक्षसों को भस्म करने का संकल्प तक उनके मन में न उठा। समर्थ होने पर भी क्रोध को उन्होंने वश में रखा। लोभ को तो फिर आने ही नहीं दिया। तब जब वशिष्ठ के पास गये, बिना शस्त्र अस्त्र के, तो वशिष्ठ जी ने देखते ही कहा, "आइए ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जी!" तब ब्रह्मर्षि बन गये।

पुत्र! अब तुम स्वयं ही अपने मन में विचार करो, कि जितने लोग जप, तप, यज्ञ, ध्यान, भजन, कीर्तन करते हैं उनका व्यावहारिक जीवन कैसा है और मानसिक विचार कैसे हैं। गृहस्थी बड़ा धर्मात्मा, दानी, नम्र भाव, सुशील भी हो, यदि वह संयमी नहीं है, जितेन्द्रिय नहीं है, माना कि वह दुराचारी नहीं परन्तु अपने घर में अपनी धर्मपत्नी से भी तो संभोग धर्मानुसार नहीं करता, काम वृत्ति के कारण उसका मन कैसे शुद्ध हो जायेगा? वानप्रस्थी बनकर जितेन्द्रिय तो रहता है परन्तु मन में किसी के प्रति द्वेष अथवा ईर्ष्या करता है, प्रत्यक्ष में द्वेष नहीं करता परन्तु मन में ही कुढ़ता जाता और बुरा चिन्तन करता है, तो भी क्रोध लोभ के कारण वह जीवन सफल नहीं कर सकता। सन्यासी बनकर वह सब कुछ त्याग कर दे परन्तु लोकेषणा का भूत नहीं छोड़ सका, तो भी कमी रह गई।

परमात्मा की प्रतिज्ञा

वेद में परमात्मा की प्रतिज्ञा है कि जो प्रीति और सत्याचरण भाव से मेरी शरण में आता है, मैं सर्वान्तर्यामी रूप से उसकी अविद्या का नाश और आत्मा में प्रकाश कर देता हूं और सब दुःखों से छुड़ा, वैज्ञानिकों का सा शुद्ध ज्ञान देकर मोक्ष प्राप्त करा देता हूं। कितने ऐसे मन्त्र आते हैं। प्रीति और सत्याचरण भाव से उपासना किया हुआ परमेश्वर अपने उपासक को तुरन्त अपनी दया से पापों से पृथक् कर देता है और धर्म अर्थ काम मोक्ष की सिद्धि प्राप्त करा देता है। यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय के अन्तिम मन्त्रों में देखें—

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥
यजु०-अ० ४ मं० १६

पदार्थ—हे दिव्यस्वरूप प्रकाशस्वरूप करुणामय जगदीश्वर! जिससे हम लोग आपके लिए अधिकतर सत्कारपूर्वक प्रशंसा का सेवन करें, इससे सबको जानने वाले आप हम लोगों से कुटिलता रूप पापाचरण को पृथक् कीजिए। हम लोगों को विज्ञान, धन वा धन से हुए सुख के लिए धर्मानुकूल मार्ग से समस्त प्रशस्त ज्ञानों को प्राप्त कीजिए।

भावार्थ—जो सत्य भाव से परमेश्वर की उपासना करते हैं, यथाशक्ति उसकी आज्ञा का पालन करते हैं और सर्वोपरि सत्कार के योग्य परमात्मा को मानते हैं उनको दयालु ईश्वर पापाचरण मार्ग से पृथक् कर धर्मयुक्त मार्ग में चलाकर विज्ञान देकर, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने के लिए समर्थ करता है। इससे एक अद्वितीय ईश्वर को छोड़ किसी की उपासना कदापि न करें।

अन्त में मनुष्य को ईश्वर उपदेश करता है—

ओ३म् हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
याऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म ॥
यजु०-अ० ४० मं० १७

पदार्थ—हे मनुष्यो! जिस ज्योति स्वरूप रक्षक मुझसे अविनाशी यथार्थ कारण के आच्छादित मुख के तुल्य उत्तम अंग का प्रकाश किया जाता, वह प्राण वा सूर्य मंडल में पूर्ण परमात्मा है, वह परोक्ष रूप में आकाश के तुल्य व्यापक, सबसे गुण, कर्म और स्वरूप करके अधिक हूं, सब का रक्षक जो मैं हूं उस का 'ओ३म्' ऐसा नाम जानो।

भावार्थ—सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! जो मैं यहां हूं वही अन्यत्र सूर्यादि लोक में हूं, जो अन्य स्थान सूर्यादि लोक में हूं वही यहां हूं। सर्वत्र परिपूर्ण आकाश के तुल्य व्यापक मुझ से भिन्न कोई बड़ा नहीं। मैं ही सबसे बड़ा हूं। मेरे इन लक्षणों से युक्त पुत्र के तुल्य, प्राणों से

प्यारा मेरे निज का नाम "ओ३म्" यह है। जो मेरा प्रेम और सत्याचरण भाव से शरण लेगा, उसकी अन्तर्यामी रूप से मैं अविद्या का विनाश कर उसकी आत्मा का प्रकाश करके शुभ गुण, कर्म, स्वभाव वाला कर सत्य स्वरूप का आवरण स्थिर कर योग से हुए विज्ञान को दे और सब दुःखों से अलग करके मोक्ष सुख को प्राप्त करता हूं।

शत्रुओं का वशीकरण कैसे हो

पुत्र—फिर कौन-सा उपाय ऐसा हो जो काम, क्रोध, अहंकार आदि शत्रुओं को मार दिया जा सके? सारा संसार तो इन्हीं के चक्कर में फंसा हुआ है। मालूम होता है कोई सुलभ साधन इनके मारने का नहीं, वरना और न सही विद्वान् लोग तो सफल-जीवन हो सकते।

पिता—पुत्र! उनमें से मारनी तो कोई चीज नहीं। जिन चीजों का सम्बन्ध अनादि काल से हो वह मारी कैसे जा सकती हैं? देखो! काम, क्रोध और लोभ यह तीनों वश में करने के लिए हैं, इनको जीता जाए, अपने आधीन किया जाए अथवा इन वृत्तियों का निरोध किया जाए। ये तीनों समय-समय पर उपयोगी है। मर्यादा से उल्लंघन करने पर शत्रु बन जाते हैं। घृत, दुग्ध उत्तम वस्तुयें हैं, अमर्यादित-रूप से इनका प्रयोग हानिकारक बन जाता है।

विकास और समर्पण—मोह का विकास

मोह अहंकार न मारने की चीज हैं न वश करने की। इनका विकास करना चाहिए। मोह जैसे अपने शरीर पुत्र-परिवार तक सीमित है ऐसे उसे बढ़ा-फैला कर असीम तक प्राणी मात्र तक कर दिया जाये तो वह प्रेम कहलाता है। और अहंकार बढ़ाने की चीज नहीं, वह समर्पण करने की चीज है। जिसको समर्पण कर दिया जाय वही ही बन जाता है। अब अहंकार प्रभु के अर्पण कर दिया जावे तो मनुष्य ब्रह्म-मय, आनन्द-मय बन जाता है।

स्वार्थ और अहंकार

मम और अहं का सारा खेल संसार में फैल रहा है। जहां स्वार्थ और अहंकार दोनों अर्पण होंगे वहां शान्ति और स्थिरता होगी, जहां स्वार्थ अहंकार के अधीन हो वहां खामोशी रहती है। जहां अहंकार स्वार्थ के अधीन हो वहां दबाव रहता है और जहां स्वार्थ और अहंकार एक हों वहां प्रेम और प्रीति का वातावरण रहता है।

अशान्ति का कारण, अंधकार-अज्ञान तीन प्रकार का है

अन्धकार-अज्ञान तीन प्रकार का है जिसके कारण जीवात्मा को शान्ति नहीं मिलती और न ही सफलता मिलती है। यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के मन्त्र ३, ९ और १२ में इसका वर्णन आता है।

एक—क्रियागत अन्धकार

ओ३म् असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।।
यजु०-अ० ४० मं० ३

भावार्थ—वे ही मनुष्य असुर-दैत्य-राक्षस तथा पिशाच आदि हैं जो आत्मा में और जानते और वाणी से और बोलते और करते कुछ और ही हैं । ये कभी अविद्या रूप दुःख सागर से पार हो आनन्द को नहीं प्राप्त कर सकते । इसका नाम क्रियागत अन्धकार है । आत्मघाती अर्थात् आत्मा का हनन करने वाले क्रियात्मक अन्धकार में फंसे हुये हैं । उनके मन-वचन-कर्म में समानता नहीं होती ।

दो—बुद्धिगत अन्धकार

ओ३म् अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याँ रताः ।।
यजु०-अ० ४० मं० ९

भावार्थ—जो मनुष्य समस्त जड़ जगत् के अनादि नित्य कारण को उपासना भाव से स्वीकार करते हैं, वे अविद्या को प्राप्त होकर क्लेश को प्राप्त होते हैं । और जो उस कारण से उत्पन्न स्थूल-सूक्ष्म कार्य-कारण रूप अनित्य संयोग जन्य कार्य जगत् को इष्ट उपास्य मानते हैं वे गाढ़ अविद्या को पाकर अधिकतर क्लेश को प्राप्त होते हैं । ऐसे अन्धकार का नाम बुद्धिगत अन्धकार है । इसका कारण केवल अविद्या की उपासना अथवा केवल विद्या की उपासना है ।

तीन—हृदयगत अन्धकार

ओ३म् अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाँ रताः ।।
यजु०-अ० ४० मं० १२

भावार्थ—जो मनुष्य अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष और अभिनिवेश नामक क्लेशों से युक्त हैं वे परमेश्वर को छोड़ इससे भिन्न जड़ वस्तु की उपासना कर महान् दुःख सागर में डूबते हैं और शब्द अर्थ का अन्वय मात्र संस्कृत पढ़-कर सत्य भाषण पक्षपात रहित न्याय का आचरण रूप धर्म नहीं करते, अभि-मान में आरूढ़ हुए विद्या का तिरस्कार कर अविद्या को ही मानते हैं, वे अत्यन्त तमोगुण रूप दुःख सागर में निरन्तर पीड़ित होते हैं । इस अंधकार का नाम हृदयगत अन्धकार है जो या केवल निरोध से उत्पन्न होता है या केवल विकास से ।

पुत्र—पिता जी ! यह स्पष्ट नहीं हुआ । कृपया विस्तार से समझाइये ।

पिता—इसको विस्तार से यूं समझो :—

(१) आत्म ज्ञान से शत्रुता करने वाले जो कोई आत्मघाती जन हैं वह जन कौन हैं ? भक्ति हीन, भोग परायण, लोभी, अकर्मण्य मनुष्य—ये क्रियागत अन्धकार में फंसे हुये हैं। काम, क्रोध, लोभ के कारण इनके लिये नरक अर्थात् अन्धकारमय अज्ञानमय योनियां फल हैं।

(२) अविद्या प्रवृत्ति मार्ग और विद्या निवृत्ति मार्ग, जो लोभ मोह के कारण केवल प्रवृत्ति मार्ग में आसक्त रहते हैं अथवा जो लोग केवल परलोक के लिये ही करते रहते हैं, वे भी अन्धकार में पड़ते हैं। केवल प्रवृत्ति मार्ग वाले चाहे शुभ कर्म करें पर स्वार्थ के कारण उनके हृदय कठोर हो जाते हैं और निवृत्ति मार्ग वालों में क्रोध उत्पन्न हो जाता है।

आसक्ति कब होती है

अज्ञान से जो सम्पत्ति उत्पन्न की जाती है उसमें मनुष्य को आसक्ति हो जाती है और अज्ञान से जो शक्ति अथवा अधिकार प्राप्त किया जाता है उससे मनुष्य को अभिमान पैदा हो जाता है, यह दोनों डुबो देते हैं।

(३) तीसरा है हृदयगत अन्धकार। असद् वृत्तियों का निरोध और सद् वृत्तियों का विकास करना। जो लोग अहंकार के कारण केवल असद् वृत्तियों को तो रोकते हैं परन्तु सद् वृत्तियां अपने मन में उत्पन्न नहीं करते अर्थात् पापों से तो बचते हैं परन्तु पुण्य नहीं करते। कितने आदमी देखे जाते हैं कि वह सत्य से कमाते हैं, झूठ नहीं बोलते, चोरी नहीं करते, इत्यादि परन्तु दान पुण्य से भी कोसों दूर रहते हैं। अपने में सन्तोष करते हैं परन्तु दूसरे के दुःख दर्द में उन्हें जूं तक नहीं रेंगती और कई ऐसे हैं जो गुणी तो अच्छे हैं, हवन करते हैं, सन्ध्या जाप करते हैं, परोपकार वृत्ति भी रखते हैं, परन्तु पाप भी ग्रहण कर लेते हैं, तो ऐसे सद् वृत्तियों के विकास वाले अवगुण को नहीं छोड़ सकते। केवल गुण चक्र से नहीं छूटते।

□

ओ३म्

तीसरा सर्ग

साधन साधन है, साध्य साध्य

पुत्र—चक्र से नहीं छूटते ? यह कैसे ? इसका कारण क्या है ?

पिता—साध्य की प्राप्ति के लिये साधक को साधन करने पड़ते हैं। जब साधक साधन और साध्य को एक समझ लेता है तो साधन में ही उसका प्यार और लग्न रहती है, वह साध्य तक नहीं पहुंच सकता। कारण, कि वह आप भीतर से कोरा रह जाता है। जहां साधन और साधक एक रूप हो जावें वहां साध्य की प्राप्ति शीघ्र हो जाती है।

पुत्र—यह बात मेरी समझ में भली प्रकार नहीं आई, कृपया अधिक विस्तार से समझाइये।

पिता—कल्पना करो, एक साधक परमात्मा की प्राप्ति का साधन यज्ञ को चुन लेता है। अब वह यज्ञ में इतनी श्रद्धा रखता है कि यज्ञ को उत्तम स्थान, आसन, पात्र, उत्तम से उत्तम सामग्री, घर में तैयार किया हुआ शुद्ध घृत, अनेक प्रकार से यज्ञशाला को सुभूषित करना, सफाई, शुद्धिपूतता, सुगन्धित पदार्थों से और सौन्दर्य से इतना प्रभावशाली बनाता है कि दूर-दूर से लोग आकर्षित मोहित हो जाते हैं। यज्ञ का अनादर नहीं सह सकता। अहर्निश उसी के लिये अपना तन, धन लगाने में प्रसन्नता और सफलता समझता है परन्तु उसके जीवन में यज्ञ की 'स्वाहा' और 'इदन्न मम' का लेश मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा। ऐसे साधक ने साधन को ही साध्य रूप दे दिया है। वह यह नहीं समझता कि साधन और साध्य दो पृथक्-पृथक् वस्तुयें हैं। साधन साधन है, साध्य साध्य है। साधन साध्य को प्राप्त करने का एक माध्यम अथवा मार्ग या यन्त्र है।

अब एक और ऐसा साधक है जिसने यज्ञ क्रिया को अपने मन में भी घटा एक कर दिया है। वह स्वयं आहुति बन गया है। उसका जीवन यज्ञमय बन गया हैं। इसे साध्य आराध्य देवता की प्राप्ति सुलभ हो जाती है।

धर्म प्राण—भगवत् विश्वास

मन बड़ा ही प्रबल है। जन्म-जन्म से वासनाओं के संस्कार चित्त में दबे पड़े हैं। कब कौन सा दोष, कौन सी वासना भड़क उठेगी, इसका ठिकाना नहीं है। जो दोष अपने में ढूंढने से भी नहीं जान पड़ते वह भी समय पाकर इस प्रकार उभर पड़ते हैं कि मनुष्य उनका दास सा बन जाता है। सारे संयम, सब विचार

धरे के धरे रह जाते हैं। अपने बल पर जो संयम करना चाहता है, उसके संयम का भवन जल पर खड़ा है।

भगवान् के भरोसे, उन्हीं की कृपा के आश्रित सारे धर्म एव संयम चलते हैं। तभी वह सुदृढ़ होते है। **भगवान् पर विश्वास होना ही धर्म का प्राण है।** जहां प्राण नहीं अर्थात् भगवत् विश्वास नहीं, वहां धर्म कैसा? वह तो मृत शरीर समान निरर्थक ढांचा है। वहां सामाजिक सदाचार के रूप में संयम, सत्यादि हों भी तो यह सब मृत समान है। न जाने यह कब नष्ट हो जायेंगे, इसका कुछ ठिकाना नहीं।

□

ओ३म्

चौथा सर्ग

वापस चलो—प्रेम परस्पर प्रीति

पुत्र—अच्छा पिता जी ! अब वापस चलें। अब मुझे वह मन्त्र "प्रियं मा कृणु" समझाइए। कैसे आचरण करूं ?

पिता—प्रथम तुम इसका अर्थ जानो। एक अर्थ तो यह है—हे प्रभो ! मुझे विद्वानों तथा देवताओं का प्यारा बनाओ। मुझे राजाओं तथा क्षत्रियों का प्यारा बनाओ। मुझे वैश्यों, शूद्रों का प्यारा बनाओ।

दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि मैं विद्वानों से प्रेम करूं; राजाओं, वैश्यों तथा शूद्रों से प्रेम करूं।

दोनों सूरतों में मेरी अवस्था जीवन की ऐसी होनी चाहिए, चाहे मैं उनके प्रेम का पात्र बनूं अथवा वे प्रेम के पात्र बनें।

प्रेम यज्ञ की नाभि है

प्रेम एक ऐसा साधन है जो यज्ञ की नाभि है। बिना प्रेम के संसार में किसी बालक का पालन तक नहीं हो सकता। परिवार, समाज, जाति, वंश का पालन, पोषण, रक्षण और उत्थान बिना प्रेम के नहीं हो सकता। परमात्मा भी बिना प्रेम के दर्शन नहीं देते। प्रेम पशु-पक्षियों में भी पाया जाता है। मानो प्रेम एक दैवी गुण है, जिसका सम्बन्ध आत्मिक जगत् से है। आत्मा का विकास ज्ञान से होता है और ज्ञान की प्राप्ति का साधन भी श्रद्धा भक्ति प्रेम ही है। मानव की उत्पत्ति भी माता-पिता के प्रेम से होती है और लालन-पालन भी प्रेम के कारण होता है।

पुत्र—पिता जी ! यज्ञ तो कर्म है और प्रेम तो भक्ति है। आप इस मन्त्र से भक्ति का अर्थ लेते हैं अथवा कर्म का ?

पिता—यज्ञ ऐसा शब्द अथवा कार्य है जो सारगर्भित है। निष्काम कर्म ही यज्ञ होता है और यही भक्ति का बाह्य रूप है जिससे अन्तःकरण कीशु द्धि हो कर भक्ति योग्य जीवन बन जाता है।

पुत्र—कर्म तो कभी निष्काम हो ही नहीं सकता। मनु भगवान् भी ऐसा ही कहते हैं।

पशु तो स्वभाव से कर्म करता है, उसे तो कोई बन्धन नहीं रहता, परन्तु मनुष्य तो स्वभाव और इच्छा निमित्त से करता है। निमित्त अथवा इच्छित कार्य तो अवश्य बन्धन में डालेंगे ही। हमारा वर्तमान जीवन अतीत जीवन का फल

और भावी जीवन का बीज है। स्थूल शरीर नष्ट होने पर भी स्थूल शरीर से किया हुआ कर्म नष्ट नहीं होता, क्योंकि कर्म करने पर मानसिक जगत् में एक हलचल मच जाती है और अन्तःकरण में सुख अथवा दुःख की धारा चल पड़ती है और सूक्ष्म शरीर पर एक छाप पड़ जाती है। यह सूक्ष्म शरीर कर्म संस्कार लिये हुए एक स्थूल शरीर से दूसरे स्थूल शरीर में प्रवेश करता है। यही कर्म संस्कार, वासना तथा प्रवृत्ति को जन्म देता है। अच्छे कर्म हों अथवा बुरे, बन्धन तो दोनों ही हैं।

निष्काम कर्म कौन सा ?

पिता—यह तो तुम ठीक कहते हो, परन्तु कर्मयोग हमें एक उपाय बतलाता है। यदि हम अहंकार रहित, अनासक्त और अलिप्त होकर कर्म करें, मन को निर्विकार रखें तथा अन्तःकरण में कोई लहर उत्पन्न न हो, तो उस क्रियमान कर्म से न तो प्रारब्ध का निर्माण होता है न सूक्ष्म शरीर का विकास। वह कर्म जीवात्मा के बन्धन का कारण नहीं होता।

गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमांल्लोकान्न हन्ति न विध्यते॥

गीता १८-१७

अर्थात्, जिसका मन कर्त्तापन के भाव से विमुक्त है और जिसकी बुद्धि सांसारिक विषय-वासनाओं तथा व्यवहार से अलिप्त है, वह चाहे इन समस्त जनों को मार भी दे, वह न मारता है और न ही पाप के बन्धन में पड़ता है।

इसी प्रकार यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र २ में कहा—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजोविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

अर्थात्, ऐ मानव ! त्याग भाव से कर्म करता हुआ इस संसार में सौ वर्ष जीने की इच्छा कर। इस प्रकार का किया कर्म तुझे बन्धन में नहीं डालेगा।

पुत्र—फल और आसक्ति रहित निर्लिप्त कर्म करने का ही नाम कर्म योग है। परन्तु अनासक्त और निर्लिप्त होंगे कैसे ? हमारे अन्तःकरण में जो वासना सर्पिणी छिपी हुई है, वह कर्म का रस ही पी लेती है। उपदेश देने के लिये तो मैं भी कह दिया करता हूं कि "वासना का हनन करो, प्रवृत्ति को कुचलो, अनासक्त और निर्लिप्त होकर कर्म करो।" परन्तु इन उपदेशों से कर्मयोग की समस्या हल तो नहीं होती। वासना असंख्य जन्मों के प्रारब्ध कर्म का परिणाम है। उसको हम केवल उपदेश और वाक्य ज्ञान से नष्ट नहीं कर सकते। प्रवृत्ति प्रकृति का सूक्ष्म रूप है। उसको कुचलने की चेष्टा प्रकृति के साथ एक भीषण संग्राम है।

यह सत्य है कि अनासक्त होकर कर्म करने से कर्म आत्मा का स्पर्श नहीं कर सकता, पर अनासक्त होना ही तो जीवन की सबसे बड़ी समस्या है। यदि बिल्ली के गले में घंटी बांध दी जाय तो मूसे सुरक्षित हो जावें, परन्तु बिल्ली के गले में घंटी बंधेगी कैसे ? कृपया कोई दृष्टान्त देकर समझाएं तो पता लगे।

भक्ति—भगवत् निमित्त कर्म

पिता—हां वत्स ! यह तुम ने सत्य ही कहा। शास्त्रकारों ने इसी लिये तीन मार्ग जीवन के लिये इकट्ठे जोड़े हैं:—

(१) कर्म योग, (२) भक्ति योग, (३) ज्ञान योग। यहां पर भक्ति योग आकर कर्म योग की सहायता करता है। अकेला कर्म योग जिस समस्या का समाधान नहीं कर सका था, भक्ति आकर उसे सुगम कर देती है। भक्ति कहती है, जीवन के सारे कर्मों को करो पर उन्हें भगवत् निमित्त करो। भगवत् कैङ्कर्य समझ कर करो। हमें भोग वासना से प्रेरित होकर कर्म नहीं करना चाहिए, पर कर्त्तव्य की प्रेरणा से भगवत् कैङ्कर्य समझ कर करना चाहिये। सारे कर्मों को यदि हम भगवान् को समर्पित कर दें, तो फिर आत्मा के बन्धन के लिये हमारे पास कर्म बच कहां से जाता है ?

कर्म करने की बहुत आवश्यकता है। अब हम शरीर पा चुके। यह शरीर पूर्व कर्मों का फल स्वरूप है और जन्म-जन्मातर के कर्मों के संस्कार और वासनाएं इसके सूक्ष्म शरीर में निहित हैं, जैसा तुमने स्वयं कहा। जिस प्रकार स्थूल साधन से उठाया, हटाया जाता है, उसी प्रकार सूक्ष्म वस्तु को सूक्ष्म साधन से उठाया, हटाया जायेगा। शरीर को शरीर से दबाया जाता है। मन को मन से उठाया और हटाया जाता है और संस्कारों को संस्कारों से मिटाया, दबाया, हटाया अथवा उठाया जाता है। वह जो जन्म-जन्मान्तर के अच्छे बुरे संस्कार हमारे अन्दर हैं,अब नये अच्छे-अच्छे कर्मों के त्यागने से अथवा न करने से अच्छे संस्कार ही बनेंगे और नये बुरे न करने से बढ़ती न होगी और पिछले बुरे संस्कार थोड़े होने से अच्छे बहुत संस्कारों के मुकाबले में बल न पकड़ सकेंगे।

उदाहरण के रूप में, पूर्व जन्मों के पाप संस्कार एक मनुष्य में एक करोड़ सिंचित हैं और अब की प्रारब्ध जिन से बनी है, वह पाप संस्कार एक सहस्र है। इन एक सहस्र का फल तो भोगना ही पड़ेगा। यदि मनुष्य अपने वर्तमान जन्म में और पाप कर्म न करे और पुण्य कर्म ही करता जाये, तो यदि उसने पुण्य कर्मों के संस्कार मानो एक सहस्र नए पैदा कर लिए तो भावी जन्म में पिछले सिञ्चित कर्मों के अच्छे संस्कार और अब के संस्कार तो जमा हो जावेंगे और नवीन बुरा संस्कार न होने से उत्तम जीवन मिलेगा और वहां भी इन संस्कारों के प्रभाव से बुरा कर्म न करेगा तो अच्छे कर्मों के संस्कार धीरे-धीरे बढ़ते जावेंगे। बुरा संस्कार सामने न होगा और पूर्व कर्मों के थोड़ी-थोड़ी संख्या में भुगतने योग्य अथवा सहन योग्य फल भुगवा कर घटते ही जावेंगे।

ज्यों-ज्यों जो-जो कर्म पुण्य का बढ़ता जावेगा, वह इतना प्रबल हो जावेगा कि स्वभाव में दाखिल हो जावेगा।

स्वाभाविक कर्म में विशेषता

जो कर्म स्वाभाविक किया जाता है, वह अहं मम भाव से रहित हुआ करता है। हम सब मल मूत्र का विसर्जन करते हैं, खाते पीते हैं तो उनकी याद में नहीं रहता, यहां तक कि किसी से पूछो तुमने परसों क्या खाया था तो उसे याद नहीं आता, तो गोया उसका चित्त पटल पर निशान नहीं पड़ता। जिसके आंकड़े नहीं बने, वह फिर बन्धन कैसे करेगा?

पुत्र—पिता जी! बात तो आपने एक बड़ी रहस्यपूर्ण सुलझाई। यदि ऐसे करने लग जावें तो शायद जल्दी बेड़ा पार हो जावे।

ओ३म्

पांचवां सर्ग

कारण

पुत्र—परन्तु क्या कारण कि इतने प्राणी हैं, किसी की समझ में न आई होगी ? क्या अब का हमारा जन्म उन्नति पर है अथवा अवनति पर ?

पिता—बेटा ! कर्म की गति बड़ी गहन है। भगवान् कृष्ण ने गीता में अर्जुन को कर्ममीमांसा समझाते हुए कहा—

गहना कर्मणो गतिः।

अब एक बात यूं समझो। पिछली सृष्टि को तो छोड़ो, इस वर्तमान सृष्टि को एक वृन्द सतानवे करोड़ उन्चास लाख उन्तीस हजार चवन वर्ष बीत चुके हैं, तब से हमारा जन्म इस सृष्टि का हुआ। अनेकों बार हम जन्मे, अनेकों बार काल कराल का ग्रास बने।

देखो ! भगवान् कृष्ण ने गीता ४-५ में कहा है—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥

अर्थात्, हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। हे परंतप ! उन सब को तू नहीं जानता है परन्तु मैं जानता हूं।

पुत्र ! निश्चय जानो कि कई बार हम पशु बने, पक्षी बने, कीट पतंग बने, नामालूम क्या-क्या बने और अब प्रभु कृपा से हमें मानव देह मिली। यदि हम मनुष्य बनते आते तो जरूर हमारा जीवन ऊंचा होता। ऐसा प्रतीत होता है कि हम अनेक चक्कर काटते रहे।

कल्पना करो, यदि दो अरब वर्षों से हम मनुष्य ही बनते आये हों, हर जन्म में सम्भव तो नहीं फिर भी यदि सौ-सौ वर्ष की आयु भोगते रहे हों तो भी हमारे दो करोड़ जन्म हो गए। यदि हमने कम से कम भी पाप किए हों, यूं समझो कि वर्ष भर में केवल एक पाप किया हो तो १०० वर्ष में १०० पाप हुए। अर्थात् एक जन्म में १०० पाप और २ करोड़ जन्म में २ वृन्द पाप हो गए। अब हम उन्नति पथ पर जा रहे हैं अथवा अवनति पर इसकी कसवटी है।

कसवटी

उन्नति और अवनति की कसवटी यूं समझो। जितने भी पाप हैं वह या तो काम वृत्ति से होंगे या क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मत्सर आदि वृत्तियों से होंगे। अब अपने अन्दर झांककर देखें कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार,

मत्सर, जब से तुम पैदा हुये हो, इतनी आयु में बढ़ते जा रहे हैं या घटते। यदि बढ़ते जा रहे हैं तो पूर्व संस्कारों का प्राबल्य है और नई रोक थाम नहीं तो पतन हुआ। यदि घटते जा रहे हैं और नई रोक थाम भी है तो समझो कि पूर्व जन्म के अच्छे संस्कारों का फल हैं। अब भी अच्छे हो रहे हैं तो उत्थान है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी पिछली और अगली अवस्था का अनुमान लगा सकता है।

पुत्र—तो क्या बहुत ऊंचा योगी बनकर भी गिर जाने की संभावना हो सकती है ?

पिता—हां, यह तो कितने उदाहरण हैं। इतिहासों में भी आते हैं और दन्त कथाएं भी प्रसिद्ध हैं। प्राचीन काल में भरत नाम के एक महान् प्रतापी एवं भगवत् भक्त राजा हो गये हैं जिन के नाम से यह देश "भारतवर्ष" कहलाता है। अन्त समय में उनकी एक मृगशावक में आसक्ति हो जाने के कारण उन्हें मृत्यु के बाद मृग का शरीर मिला। मृगशरीर त्यागने पर यह उत्तम ब्राह्मण कुल में जड़भरत के रूप में अवतीर्ण हुवे। जड़भरत के अङ्गिरस गोत्र वेदपाठी ब्राह्मण थे और बड़े सदाचारी एवं आत्मज्ञानी थे। वे शम, दम, संतोष, क्षमा, नम्रता, आदि गुणों से विभूषित थे और तप, दान तथा धर्माचरण में रत रहते थे। भगवान् के अनुग्रह से जड़भरत को अपने पूर्व जन्म की स्मृति बनी हुई थी। वह मोह जाल में न फंसे और ईश्वर भक्त होकर आत्मसाक्षात् कर गये।

दूसरी बात सुनी हुई है। एक बड़ा तपस्वी ज्ञानी जंगल में आयु भर रहा। एक बार षाह के महाराजाधिराज का डेरा उस जंगल में जा लगा। महाराजा के साथ कुछ सेना, कर्मचारी और भंगी तक सब मौजूद थे। अकस्मात् वह तपस्वी घूमता हुआ उस कैम्प में जा निकला। एक भंगिन के स्थान से गुजर हुआ। भंगिन खड़ी झाड़ू दे रही थी। प्रभु की अदभुद् लीला है! वह थी भंगिन परन्तु इतनी सुन्दर थी कि तपस्वी की दृष्टि पड़ते ही वह तपस्वी मोहित हो गया। उसकी दृष्टि भंगिन के सीने छाती पर पड़ी और उसके स्तनों को स्पर्श करना चाहा। बहुत व्याकुल हुआ और साथ ही अपनी तपस्या का विचार आते ही पश्चात्ताप से मूर्छित होकर गिर पड़ा और प्राण निकल गये। वही जीव भंगिन के गर्भ में आया और समय पर उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही जो वह सीने के साथ लगाने लगी और स्तन मुख में देना चाहा, वह बड़ा चिल्लाया। दिन रात चिल्लाता, विशेष कर जब भंगिन छाती के साथ लगाती वह अधिक चिल्लाता। राजा की भंगिन थी, कोई कमी नहीं थी। राजवैद्य भी चिकित्सा कर चुके परन्तु किसी की समझ में न आया। दिन रात जहां बालक चिल्लाता, माता-पिता और मुहल्ले वाले बहुत दुःखी होते।

अन्त में एक योगी साधु का आगमन हुआ। उसे दिखाया। जब ही उसने यह दशा अपनी आंखों से देखी तो कहा, दूर हो जाओ। इसे कोई रोग नहीं है। वह अकेला हो कर बच्चे को कहने लगा, 'वत्स ! देख लिया तप को भंग करने

वाली काम शक्ति का फल ? अब तुमने फल भोग लिया। जहां तुम्हारा मन पतित हुआ था सीना को देखकर और तत्काल तपस्या भंग का विचार आगया और मूर्छा से तुम्हारा प्राणांत हो गया, उस क्षण की वासना चाहना का फल तो है भंगिन के गर्भ में आने का कि जिस सीना को तुम एक बार स्पर्श करना चाहते थे बच्चा बनकर वर्षों स्पर्श करो और तपस्या का विचार पश्चात् आने का फल है कि तुमको अभी से उस सीना से घृणा और भय लग रहा है जिसने तुम्हारी तपस्या को भंग किया। अब तुम्हारा पाप उतर गया है, अब तुम जाओ और दूसरे घर में जन्म लेकर अपनी तपस्या को पूर्ण करोगे।' बस, बालक सुन कर शांत हो गया और साधु के चले जाने के थोड़ी देर बाद प्राण त्याग दिये और विमुक्त हो गया। पुत्र ! इस प्रकार की कथायें कई एक मिलती हैं।

पुत्र—तो क्या इतना आत्म-बल प्राप्त करके भी कोई पतित हो सकता है ?

पतन का कारण—अभिमान

पिता—क्यों नहीं। नियम की बात समझो। जो गुण, कर्म, स्वभाव अथवा द्रव्य स्वाभाविक नहीं है और उसका विकास किया गया है उसका ह्रास हो सकना सम्भव है, असम्भव नहीं, चाहे वह आत्म-बल भी हो। आत्म-प्रकाश, आत्म-ज्ञान भी हो और जिस अवगुण का विकास हुआ है उसका भी ह्रास तुम देखते ही हो। जीव को जो वस्तु जितनी स्वाभाविक है उसका उतना स्थिर रहना तो सम्भव है, इसलिये आत्मबल, आत्मज्ञान, आत्मप्रकाश प्राप्त कर लेने वालों को भी चिता पर पहुंचने तक अभिमान ही उसका मूल कारण होगा।

इसलिये इस अहं और मम को पूर्ण समर्पण कर सकने के योग्य बनने के लिये सर्वदा ऐसे शुभ कर्म करते रहना चाहिए कि जो अन्तःकरण को शुद्ध बना सकें। जन्म-जन्मान्तर लग जाते हैं। अभी से आरम्भ कर देना चाहिये। यह शरीर बड़ा अनमोल मिला है।

मानव शरीर का महत्व

(भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से, भिन्न-भिन्न रूप शरीर के।)

पुत्र—उधर तो अपने शरीर को मांस, रक्त, अस्थि आदि का मलिन बता कर कहा कि उससे मोह नहीं करना चाहिये, इधर आप अनमोल बताते हैं। यह भेद क्यों ?

पिता—प्यारे पुत्र ! वहां एक ऐसा सारगर्भित उपदेश ऋषि ने माता को किया था। माताओं में मोह ममता प्रसिद्ध है। माता शरीर से दूसरा शरीर रचती है। ९ मास गर्भ में रखती और २-२॥ वर्ष गोदी में पालती है, उसको इसलिये वहां आसक्ति हो जाती है। वहां आसक्ति को दूर करने के लिये शरीर का चित्र खींचकर उसमें मोहित न रहने के लिये दर्शाया। इस शरीर को कई एक महात्माओं ने, विद्वानों ने किराये की गाड़ी भी कहा है और कई एक ने

उसे सेतु और कई एक ने ब्रह्म मन्दिर और नौका भी बताया है।

प्रत्येक विचारधारा का पृथक्-पृथक् रहस्य

(१) जिन्होंने इसे किराये की गाड़ी कहा है उनका भाव भी यही है कि किराये की गाड़ी अपनी यात्रा समाप्त होते ही त्याग दी जाती है, किरायेदार का उससे कोई विशेष लगाव नहीं होता, उसके हानि लाभ में।

(२) जिन्होंने इसे सेतु कहा, वह कर्मयोगी इस संसार यात्रा के लिये शरीर को पुल अर्थात् सेतु समझते हैं, जैसे पुल पर से मानव निर्भय होकर अपनी यात्रा तय कर लेता है। केवल सेतु की दृढ़ता चाहिये। ऐसे ही शरीर को स्वस्थ और बलवान् रखना और उसी पर सवार होकर अपना जीवन कार्य निश्चित करना।

(३) जिनके मत में यह शरीर नौका है उनका भाव इस संसार सागर से पार होने का केवल मात्र साधन यही मानव शरीर है। इस शरीर के अतिरिक्त किसी अन्य योनि का शरीर जीव को पार नहीं पहुंचा सकता। नौका में आराम से नाविक के समर्पित होकर अथवा चप्पू स्वयं चला कर पार होता है, परन्तु सावधानी यह होती है कि नौका में छिद्र न हो। बस, वह इस शरीर को पाप रूप छिद्रों से पृथक् रखे और जैसे नौका नदी में रहते हुये भी जल के ऊपर-ऊपर रहती है ऐसे मानव जीव इस संसार सागर रूपी विषय-वासनाओं के जल में रहता हुआ भी उससे ऊपर-ऊपर इस शरीर को रखे। "पद्मपत्र मिवाम्भसा"—जल में कमल के पत्ते की न्याईं।

(४) और जो इस सरीर को ब्रह्म मन्दिर समझते हैं, वह जिस प्रकार मन्दिर में मानव जाकर अपने इष्ट देव की पूजा करता और दर्शन करता है और मन्दिर को अन्दर बाहर से स्वच्छ शुद्ध रखता है, कोई दुर्गन्धित पदार्थ अथवा घृणित पापमय पदार्थ भीतर नहीं ले जाता और सुगन्धित वस्तुओं से उसे धूप दीप से भली प्रकार शोभायमान करता है, इसी प्रकार भक्त जन इस शरीर रूपी ब्रह्म मन्दिर में किसी पाप की वृत्ति को नहीं रहने देते। यम नियम के पालन से भीतर बाहर इसे पवित्र रखते हैं। इस मन्दिर में आत्म ज्योति, ज्ञान दीपक और मानसिक धूप जगा कर जीवन को सुगन्धित, आकर्षक बनाते हैं।

वास्तव में मनुष्य शरीर एक अमूल्य वस्तु है

तुम एक मनोरंजक बात को सुनो। कूकर, सूकर गन्दे पदार्थ से उदर भरते हैं। गधा, घोड़ा, गौ, बैल, उष्ट्र, हस्ति तक अपनी जिह्वा को क्या चखाते हैं—घास, फूस, तृण आदि जो रुपया दो रुपया मन की कीमत का है। सिंह, व्याघ्र, लोमड़ी आदि रक्त, मांस खाते पीते हैं। परमेश्वर ने मनुष्य के शरीर को भी उनके शरीरों की तरह इन पांच तत्वों से ही बनाया। जैसे उनके नेत्र, नासिका, कर्ण, जिह्वा और उदर हैं, ऐसे ही मनुष्य के भी, परन्तु मनुष्य की जिह्वा और

उदर के लिये कितने मूल्यवान् पदार्थ बनाये। मनुष्य जहां घटिया वस्तु गाजर, मूली, शलजम ८) रु० मन वाले पदार्थ खाता है, वहां वह २०), २५) मन वाले अन्न, ५०), ६०) मन वाले फल और १५०), २००) मन वाले मेवे और केसर ३२००) मन वाला और ॥) रत्ती वाली कस्तूरी १५३०) मन वाली भी मनुष्य खाता है। अब अनुमान लगाओ, आखिर तो कोई ऐसा प्यारा और मूल्यवान् शरीर मनुष्य को मिला है कि पशु को तो एक दो रुपया मन वाली वस्तु का अधिकारी बनाया और मनुष्य को १॥ लाख मन से अधिक मन वाली वस्तु का अधिकारी बनाया।

प्यारे ! यह समस्त भूमि जो तुम देख रहे हो, कहीं इसका मूल्य आठ आने गज है तो कहीं रुपया। कहीं सौ रुपया प्रति बीघा में मिलती है, तो कहीं सौ रुपया एक मरला का मूल्य है जो आठ सहस्र प्रति बीघा बनती है। है तो सब मिट्टी, परन्तु जिस मिट्टी में से स्वर्ण, अभ्रक, लोहित, ताम्र, कोयला निकलता है, वह भी मिट्टी ही है। परन्तु जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जावे कि यहां इस मिट्टी से स्वर्ण निकलता है तो फिर उस धरती पर करोड़ों रुपया व्यय कर देता है, एक कण भी उसका उठाने नहीं देता। सहस्रों रुपया लगाकर उस पर दुर्ग खड़ा कर देता है। लाखों रुपये की यन्त्र कलाएं लगाकर, शिल्पालय बना, पूरी-पूरी रक्षा करके उससे अरबों रुपये का सोना निकालता है। बस, जिसे इस मानव शरीर का ज्ञान हो गया वह तो फिर सोना पैदा करने वाली मिट्टी की न्याईं इस शरीर की रक्षा करता है और इससे अमर पद को प्राप्त करता है। जिसे ज्ञान नहीं उसके लिए यह मिट्टी का लोथड़ा है।

पुत्र—ओहो ! कितना बड़ा आवरण हमारे ऊपर आया हुआ है ! हमको इस शरीर का ज्ञान ही नहीं।

ओ३म्

छठा सर्ग
अन्तःकरण के दोष

पिता—हां पुत्र ! तीन प्रकार का मल दोष अन्तःकरण का समझा जाता है—(१) मल, (२) विक्षेप, (३) आवरण।

आत्मा पर अज्ञान का आवरण है, मन पर विक्षेप, चंचलता का दोष है और शरीर पाप वासनाओं के मल से भरा हुआ है। इन तीनों दोषों को नाश करने के लिए यह मानव शरीर मिलता है। सर्वप्रथम मल का दूर करना आवश्यक है जो पापमय जीवन से बार-बार जन्म में नीच योनियों में गति कराता है। मन की चंचलता तो उपासना से दूर होती है और अज्ञान के आवरण दूर होने से आत्म ज्ञान प्राप्त होता है।

पुत्र—तब तो बड़ा कठिन है आत्म ज्ञान होना, अहंभाव बुद्धि से मिटाना। परन्तु मैं तो इससे भी कठिन मन की चंचलता को समझता हूं। अर्जुन ने भी भगवान् कृष्ण से यही कहा था :—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढ़म्।

इतना बलवान् मन है कि वह न इच्छा करने पर भी घसीट ले जाता है पाप में। कैसे किया जाय ?

पिता—पुत्र ! सबसे प्रथम मल रहित होना, पाप दुष्कर्मों से बचना आवश्यक है। पाप वासना कर्म मनुष्य को तो आवागमन में फिराता है और शुभ कर्म वासनाएं शुभ कर्मों में प्रेरित कर अन्ततः जन्म से छुड़ा देती हैं। ऐसे समझो कि ग्रीष्म ऋतु है और हड़ चढ़ा हुआ है। नदी का जल बड़े वेग से बहता है और ऐसा मटियाला गदला है कि चुल्लू भर जल लेने में सारी मिट्टी ही मिट्टी आती है, पीने को मन नहीं करता, और इतना तीव्र प्रवाह है कि जो भी सामने आए, पदार्थ हो चाहे ग्राम, वृक्ष हो अथवा मनुष्य पशु, सबको डुबा देता है। परन्तु जब शीतकाल आता है तो उसी जल में मिट्टी नीचे बैठ जाती है। प्रवाह मन्द पड़ जाता है। वह जल चाहे प्रवाह में चल रहा हो (चंचल मन की न्याईं) तब भी वह जल स्वच्छ निर्मल पीने योग्य और अपने रूप को चाहे स्पष्ट नहीं परन्तु बोता रूप में देख सकता है। ठीक इसी प्रकार जब मनुष्य पाप कर्मों से बचकर शुभ कर्मों में लग जाता है तो पिछले पाप कर्मों की वासना रूपी मिट्टी नीचे दबकर बैठ जाती है और शुभ कर्मों का जल बहता हुआ स्वच्छ सबके लिये लाभकारी होता है और अपने स्वरूप का भी धीरे-धीरे भान कराने लग जाता है। अन्त में वह मन चंचल भी शुभ कर्मों के प्राबल्य

से उपासना द्वारा स्थिर हो जाता है और स्थिर मन स्थिर बुद्धि में जो ज्ञान उत्पन्न होता है वही आत्म दर्शन कराता है।

कर्म की प्रधानता

अत: शास्त्रकारों ने कर्म को प्रधान माना है और यही मैं कह रहा था कि ज्ञान से मनुष्य संसार का प्यारा नहीं बन सकता और न ही उपासना से बन सकता है। केवल कर्म से ही सर्वप्रिय बन सकता है।

कर्म संसार से सम्बन्ध बनाने के लिये है। उपासना परमात्मा से प्रीति करने के लिये और ज्ञान अपनी आत्मा के लिये है। इस मन्त्र का आशय संसार के व्यक्तियों से—ब्राह्मण, देवता, राजा, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों से प्रीति और प्रिय बनने के लिये था।

देव आदि कौन हैं ?

इस मन्त्र के गूढ़ रहस्य को समझो। संसार भर की मानव जाति में इतने ही वर्ग हैं। अपने परिवार से लेकर समाज, जाति, देश और संसार में "देव" वही हैं जो मान्य पुरखा अन्न, धन, ज्ञान अथवा बल, सुख अथवा अधिकार देने वाले हैं और "राजा" वही हैं जो अन्न, धन, ज्ञान, सुख, अधिकार तथा प्रजा की रक्षा करने वाले हैं और "वैश्य" वही हैं जो अपना धन, सामर्थ्य इन उपरोक्त के अधिक बढ़ाने में सहायता करते हैं और "शूद्र" वही हैं जो सबको अपने कार्य व्यवहार में व्यस्त रहने के लिये उनके तन की सेवा करते, तन की सेवा की चिन्ता से उन्हें मुक्त रखते हैं।

कोई भी मनुष्य प्राणी इस मन्त्र से बाहर नहीं बचा रहता। इसी मन्त्र का आचरण विश्व में शान्ति लाने वाला है।

फकीर साधु सम्प्रदाय—हानि अधिक, लाभ कम

पुत्र—क्षमा कीजियेगा। एक बात मेरे दिल में उपजी। जितनी सहज शान्ति साधु-सन्तों और भक्तों में देखी जाती है, वह प्रभु भजन में मस्त रहकर शान्त होते हैं, ऐसी शान्ति सहज ही में अन्य किसी को मिलनी कठिन है।

पिता—बात तो तुम्हें ठीक सूझी है। हो सकता है, स्यात् मन में यह विचार आया हो कि पिता साधु (फकीर) बन गये हैं, आनन्द में हैं। न किसी को लेन न देन, न कलह झंझट, स्वतन्त्र कुटिया बना रहते हैं। परन्तु वह भी सुन लो। मेरी अवस्था तुम्हारी समझ वाले फकीर सन्तों की नहीं। मेरा मार्ग वैदिक मार्ग है। परन्तु उनका जिनको देखकर तुम्हें विचार उत्पन्न हुआ है, वह फकीरी भी कोई सुगम वस्तु नहीं। किसी ने कहा है :—

फकीरा ! फकीरी दूर है, जैसे लम्बी खजूर।
जे पावे तो अमृत रस, जे गिरें तो चकनाचूर।।

और फकीरी के लिये कहा है :—

फिकिर सभी को खाया, फिकिर सभी का पीर।
फिकिर की फांकी जो करे, उसका नाम फकीर ।।
उदर समाता ग्रन्न ले, तन समाता चीर (वस्त्र)।
ग्रधिक संग्रह न करे, तिस का नाम फकीर ।।

भक्तों का मार्ग मध्य का मार्ग है। भक्तों की दृष्टि यह बन जाती है कि भगवान् सब कुछ हैं, बड़े दयालु हैं, मन को नम्र सरल बनाकर उसका स्मरण भजन कीर्तन करो। भोजन वस्त्र सांसारिक सुख अपने आप मिल जायेगा। जिसके हो जाओगे उसी को चिन्ता होगी। अपने को क्या परवाह ! एक की परवाह रखो, सबसे बेपरवाह हो जाओगे। भगवान् कृष्ण ने भी गीता में कहा है :—

ग्रनन्यांश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

गीता ६-२२

अर्थ—जो जन अनन्य प्रभाव से मेरी उपासना करते हैं, ऐसे निरन्तर उपासना करने वालों के योग (अप्राप्त वस्तु का प्राप्त होना) और क्षेम (प्राप्त की रक्षा अथवा कुशलता) का मैं जिम्मेदार हूं।

निःसन्देह इसमें हृदय बहुत कोमल हो जाता है, परन्तु ज्ञान मन्द पड़ जाता है और कर्म शिथिल हो जाता है। हां, भक्त बनकर और दूसरे भक्तों में मिलकर शान्ति अवश्य आ जाती है पर संसार के संघर्ष का मुकाबला करने की प्रवृत्ति और शक्ति मन्द पड़ जाती है। उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए उत्साह नहीं रहता है। हां, आनन्द मिलता है और शान्ति आ जाती है। कुछ दिन निद्रा बड़े आनन्द की आती है, भावी की भगवान् जाने।

जब अन्य देशवासी देश अथवा जाति पर आक्रमण करके उसे दास बनाना चाहते हैं और उनका अपमान करना चाहें तो जरा मस्ती की निद्रा का पता लगता है, और वह कैसे भंग होती है। भारत का साधु सम्प्रदाय इसका प्रत्यक्ष दृष्टान्त है।

भक्ति का वास्तविक फल : कर्म के लिये ज्ञान ग्रौर किया हुग्रा कर्म भगवदर्पण

पुत्र—पिता जी ! मैंने जानबूझ कर यह प्रश्न छेड़ा है कि पिता जी अपना मत प्रकट करेंगे। आपका भक्ति मार्ग पुरुषार्थ और विकास का पोषक है, उस एकांशी भक्ति वाला नहीं। आप उस मार्ग को श्रेय कहते हैं परन्तु उसके इच्छुक नहीं। अब कृपा करके उसी मन्त्र को चलाइए।

मानव महत्व दर्शाने वाली इन्द्रियां

पिता—पुत्र ! जितनी भी योनियां अथवा जीवधारी हैं उनकी आंख, कान, नाक, मुख आदि इन्द्रियां अपने लिये देखती हैं, अपने लिये सुनती हैं । वे अपने लिये चलते, खाते पीते और विषय भोग भोगते हैं । उनकी आंख किसी के दुःख दर्द को नहीं देख सकती, न कान उनके दूसरे के आर्त्त नाद को सुन सकते हैं । मनुष्य की आंखें और कान अपने लिये तो थे ही परन्तु प्रभु ने उनको दूसरे के दुःख देखने और सुनने का गुण भी दिया । दो अल्पवयस्क सहोदर भाई हों, कोई अत्याचारी एक बालक को पीटने लगे तो दूसरा बालक सहन नहीं कर सकता और कुछ नहीं कर सकेगा तो रो पड़ेगा । गौ अपने वत्स पर अथवा वत्स अपनी माता पर मार पड़ती देख कभी अनुभव ही नहीं कर सकता । तो मनुष्य को जितनी इन्द्रियां प्रभु ने दी हैं वह अपना भोग तो पशु की न्याईं स्वाभाविक भोगती ही हैं, परन्तु अन्तःकरण जगे हुवे के कारण सब इन्द्रियां समष्टि काम करने के लिये बनाई गई हैं । मनुष्य के समस्त शरीर की सकल इन्द्रियां अपने-अपने स्थल पर बहुमूल्यवान् हैं परन्तु मनुष्य का जीवन, मनुष्य का मनुष्यत्व, मनुष्य की महानता और बड़ाई विशेषता केवल तीन इन्द्रियों से है जिसके लिये वेद भगवान् ने कहा है—**"महिमा ते अन्येन नसन्नशे ।"** —यजु० २३-१५

अर्थात्, प्यारे पुत्र ! तेरी महानता जो प्रभु ने बताई है वह तीन चीजों से है, उनको किसी भी मूल्य पर लोभ मोह वश नष्ट न कर । यदि तूने इस महानता की रक्षा न की तो तेरा मूल्य फूटी कौड़ी नहीं रहेगा ।

पुत्र—पिता जी ! मेरी है तो मूर्खता कि इतने मनोरंजक और लाभदायक विषय को सुनते हुवे भी मेरा मन अन्यत्र चला गया और वह कुछ विचार और शंका में पड़ गया । मैं चाहता हूं, यदि आप पिता वात्सल्य से मेरा यह अपराध क्षमा करें तो मैं यह शंका पहले निवारण करा लूं । मन बड़ा चंचल है और यह जो थोड़ा बहुत पढ़ा और तर्क वितर्क शक्ति रखने का जो हम में अभिमान है, यही हमको खराब करता है । यदि और कोई समझा रहा होता तो स्यात् या तो यह साहस न पड़ता अथवा साहस पड़ता और कहता तो वह रुष्ट हो जाता । आप पिता हैं, पुत्र के लिये सब परिश्रम कर रहे हैं, और दूसरा भी कोई नहीं, इस लिये सत्य-सत्य कह रहा हूं ।

पिता—साधु पुत्र ! साधु । कोई बात नहीं, जिसमें तुम्हारा हित अधिक हो वही मुझे तुम्हारे लिये स्वीकार है, कहो ।

पुत्र—भक्त लोग जो भक्ति में इतना आनन्द रस और शान्ति पाते हैं, अहर्निश मुग्ध और प्रसन्न बदन रहते हैं, यही तो आनन्द प्राप्ति मनुष्य का वास्तविक ध्येय है । जब उनको यह प्राप्त है तो इसका अर्थ हुआ कि प्रभु हर समय उनके सामने रहता है, फिर उनका तो जन्म तो न होगा । और उनको

क्या चाहिये ? दूसरे देश का आक्रमण तो कभी होगा, जीवन भर ही नहीं होता, यह भी सम्भव है, तो फिर केवल भक्ति ऊंची हुई।

पिता—तुम वेद पाठ प्रतिदिन करते हो। पढ़ा नहीं,

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥

यजु० ४०-१२

अर्थात्, वह लोग घोर अन्धकार को जाते हैं जो केवल अविद्या में रत रहते हैं और वह उससे भी अधिक अन्धकार को जाते हैं जो केवल ज्ञान में रत रहते हैं।

पुत्र—वेद ने तो केवल ज्ञान, केवल कर्म करने वालों के लिये कहा है, भक्ति के लिये तो नहीं कहा।

कर्म दो प्रकार के हैं

पिता—प्यारे ! भक्ति भी तो कर्म ही है। कर्म दो प्रकार का होता है—एक बाह्य कर्म, दूसरा आन्तरिक कर्म।

(१) बाह्य कर्म से कभी मनुष्य मृत्यु से नहीं तर सकता। बाह्य कर्म का फल तो दुःख निवृत्ति है और बाह्य ज्ञान का फल सुख। वह भी जब दोनों मिले हुये हों। ज्ञान शून्य कर्म तो मनुष्य को घने अन्धकार में डालने वाला है। बाह्य कर्म भी बिना ज्ञान के दुःखदायी है, दुःख में डालता है और ज्ञान बिना कर्म में परिणत हुवे और भी अन्धकारमय है। बाह्य ज्ञान बिना कर्म निरर्थक, शुष्क; तर्क वितर्क अपनी बुद्धि को पागल बनाना है, बुद्धि जैसी अमूल्य वस्तु पर व्यर्थ बोझ लादना है, उसे परास्त करना है।

(२) आन्तरिक कर्म। पातञ्जलि महाराज ने कहा है—

तपःस्वाध्यायईश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।

अर्थात् तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान (ईश्वर भक्ति) क्रिया योग है।

भक्ति आन्तरिक कर्म है। आंतरिक ज्ञान बिना आंतरिक कर्म के अपने को जड़ बनाना है। जब वह किसी आचरण में नहीं आये तो मरने के साथ विनष्ट हो गया।

मार्ग का वास्तविक रूप

मार्ग का वास्तविक रूप तो यह है कि प्राप्त ज्ञान कर्म में आ जाय और कर्म किया हुआ प्रभु समर्पण हो जाय, यह भक्ति है। भक्ति तो वह वस्तु है जिससे वास्तविक ज्ञान की उत्पत्ति होती है और वह ज्ञान क्रिया में जब तक परिणत न हो जाए, ज्ञानी को चैन ही नहीं देता।

तुम सोचो। भक्त सदा भगवान् का सहवास करता है तो भगवान् के गुण

कर्म स्वभाव उस में आने चाहियें। भगवान् एक क्षण भी निकम्मा नहीं रहता। सारे संसार के जीवों के दुःख हरण और सुख देने में लगा हुआ है। प्रभु के सारे जड़ देवता भी एक क्षण निकम्मे निठल नहीं रहते। संसार के जीवों के हित और कल्याण में अपना सर्वस्व दिये हुवे हैं और सबका दुःख हरण कर रहे हैं। फिर भक्त एक चेतन सत्ता वाला होकर केवल अपने में शान्ति और तृप्ति में मस्त रहे तो प्रभु का कौन-सा गुण उसमें काम कर रहा होगा ?

पुत्र—जब भक्त ने भगवान् को जान लिया तो शेष उसके जिम्मे और क्या कर्म रहा ? सब से कठिन कर्म तो यही भगवान् का जानना ही है।

प्रभु की असीम महिमा

पिता—ओहो पुत्र ! कितने तुम सरल हो। भगवान् तो अनन्त स्वरूप है। उसे कौन पूर्ण जान सका या जान सकता है अथवा जान सकेगा ? मनुष्य तो अपने मन की गतिविधि को अब तक पूर्ण नहीं जान पाया। मन की अनन्त असंख्यात वृत्तियां हैं। मनुष्य को पता ही नहीं लग पाता। संसार के किसी एक भी वस्तु का पूर्ण ज्ञान कोई वैज्ञानिक आज तक नहीं कर सका। वनस्पति विशेषज्ञ को एक वनस्पति का ज्ञान है तो दूसरी का नहीं, और जिस एक को जानता भी है तो अभी अन्य बातों का उसमें ज्ञान प्राप्त करना शेष रहा होता है। नक्षत्र विद्या विशेषज्ञ अब तक उन कतिपय नक्षत्रों को नहीं जान पाए जिनका प्रकाश अब तक आदि-सृष्टि से नहीं पहुंच सका। विश्व की एक छोटी से छोटी वस्तु के सम्बन्ध में मनुष्य अपने को पूरा ज्ञानी कहने का साहस नहीं कर सकता, तब उस विश्व के आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध में पूरे ज्ञानी होने का अभिमान कैसे कर सकता है ? अपने शरीर को भी ठीक-ठीक नहीं जान सकता, उपनिषत्कार तो बार-बार यही कहते हैं कि यह परमात्मा कान, आंख, वाणी तथा प्राण, मन से नहीं जाना जाता, इनकी पहुंच से बाहर है। वेद ने कहा है।

आत्मनाऽऽत्मानमभि संविवेश। यजु० ११-२२

अर्थात् परमात्मा की आत्म भाव से उपासना की जाती है।

पुत्र—जब इन्द्रियों से वह परे है, फिर भी भक्त लोग तो जप ही करते हैं। ध्यान भी तो मन से करते हैं। फिर उनको आनन्द कैसा ?

पिता—पुत्र ! सब दुःख और सुख तो लगाव आसक्ति में हैं। वस्तु तथा व्यक्ति के साथ आसक्ति है। संयोग है। और उसका वियोग हो गया तो दुःख हो रहा है।

यह लोग संसार के विषय में लिप्त नहीं होते। निर्वाह मात्र वस्तु या व्यक्ति से सम्बन्ध रखते हैं। न मिलने पर भी सन्तोष और मिलने पर भी सन्तोष। इनको शांति केवल सन्तोष से है। एक प्रतीती बनी हुई है—हम प्रभु के हैं, प्रभु

हमारे हैं। हम प्रभु का दिन-रात चिन्तन करते हैं, चाहे वह वाणी से करते हैं, फिर भी आत्मा की भावना के बिना तो नहीं करते। आत्मभावत्व उनका है ही, परन्तु वह अंश से, एक इन्द्रिय से भक्ति करते हैं। लोगों के दुःख-सुख से उप-राम रहते हैं, इस सन्तोष से कि यह शरीर का धर्म है दुःख-सुख, और संसार में ऐसा होता रहता है। अर्थात् उनके पास आंशिक सत्य होता है। उसी से वह सन्तुष्ट हो गये। इसका फल तो सुख शान्ति पा ली यहां ही। अगले जन्म के लिये कोई विशेष कर्म तो किया नहीं, फिर पूर्व जन्मों के बचे संस्कार और कर्म तो फल भुगतवायेंगे ही।

हां, प्रभु को, ब्रह्म को जिसने ज्ञान द्वारा कुछ जान लिया और उसी जानने में लगा रहा तो अधिकाधिक जानता जाएगा। ब्रह्म के सम्बन्ध में कभी यह नहीं कहा जा सकता कि किसी ने पूर्ण जान लिया अथवा सर्वतः नहीं जाना। न तो यह है कि वह सर्वतः जानने योग्य नहीं है। न यह है कि वह पूर्ण जानने योग्य है। यदि वह सर्वतः जानने योग्य न हो तो फिर वह अभाव हुआ, हुआ ही नहीं, और यदि वह जानने में आ जाय तो प्रभु सीमित हो गया। अल्पज्ञ मनुष्य उस सर्वज्ञ को जान गया, तो फिर वह सर्वज्ञ इस अल्पज्ञ से भी छोटा हुआ। जो वस्तु जिसकी पकड़ में आ जाये वह तो फिर उस पकड़ने वाले से कम (न्यून) ही समझनी चाहिये, बड़ी कैसे समझी जाए ?

वेद भगवान् ने तो इस बात को स्पष्ट ही कर दिया:—

एतावानस्य महिमा अतो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।

यजु० ३१-३

अर्थात्, यह विश्व जगत् (जिसकी एक-एक वस्तु का भी अन्त नहीं पाया जा सकता) उसका एक पाद है। उस प्रभु की महिमा तो बेअन्त ही है।

ओ३म्

सातवां सर्ग

मानव की महानता

पुत्र—अच्छा पिता जी ! यह भी तसल्ली हो गई। अब वह तीन चीजें जिन से मानव की महानता है, कृपया बतलाइये।

पशु और मनुष्य की इन्द्रियों में भेद

पिता—प्यारे पुत्र ! मानव शरीर में बाह्य रूप से तो हाथ, मध्य में रहने वाली वाणी जो अन्दर और बाहर का काम और प्रकाश करने वाली द्वार में लटक रही है, और अन्तर में बुद्धि मन (अन्तःकरण)। पशु पक्षियों में यह तीनों चीजें नहीं हैं। इसलिये वह बेजबान और जड़वत् (दीन) पराधीन समझे जाते हैं। वानर के हाथ हैं परन्तु वह हाथ से हाथ का कर्म करने अथवा ले सकने की बुद्धि नहीं रखता।

तुम देखो, जैसे कपि एक स्थान से छलांग लगा कर ऊपर चढ़ जाता है और एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर पहुंच जाता है, परन्तु उस हाथ से यदि उसे बट्टा मारना अथवा लठ चलाना भी होता है तो जहां-जहां वानर हैं वहां मनुष्यों का जीवन न हो सकता था। वानर के सामने जरा बट्टा उठाओ अथवा लाठी दिखाओ तो भाग जाता है। यदि वह बट्टा मारना जानता होता तो वह जैसे कूद कर ऊपर जा बैठता है, ऐसे वह ऊपर से बट्टा मारता अथवा पत्थर पर पत्थर बरसाता, घर वाले किवाड़ ही न खोल सकते। वह हाथ से अपने बच्चों की जूयें तो निकाल कर मार सकता है, स्वयं भी चीज उठा कर मुख में डाल सकता है, और कोई काम उस से नहीं कर सकता।

एक बार एक पेड़ के ऊपर एक वानर की टांग दो शाखाओं के बीच में आ गई। वह चीखने चिल्लाने लगा। सारे वानर इकट्ठे हो गये परन्तु किसी को बुद्धि न आई कि हाथों से शाखा को ऊपर नीचे करके टांग निकाल लें। एक डाकिये का उधर से गुजर हुआ। सारे वानरों ने उसे घेर लिया। वह बेचारा डरा परन्तु आखिर कुछ बुद्धि से विचार करके कि वानर जब मुझे कुछ कहते हैं, सैंकड़ों की संख्या में मेरे आले-दुबाले सेनावत् घेरा डाले हुए हैं, जाने नहीं देते, तो इन पर कोई न कोई आपत्ति होगी। वह उनके साथ हो लिया। जब पेड़ के पास पहुंचे तो सब मुख ऊपर को करके चिल्लाने दिखाने लगे। डाकिये ने ऊपर देखा तो एक वानर की टांग फंसी हुई है। वह बुद्धि से समझ गया कि इसे छुड़वाने के लिये मुझे घेर लाये हैं। वह ऊपर चढ़ गया। बस, एक क्षण में

शाखा को, जो नितान्त सूक्ष्म थी, उसके पेच को ऊपर कर दिया। वानर ने छलांगें लगाईं और झट नीचे बिरादरी में आ गया।

वानरों का कृतज्ञता प्रगट करना

सब खुशी से चीखने लगे। जो उनकी खुशी की ध्वनि थी वह आर्त्त ध्वनि से विलक्षण थी। फिर भी वानरों ने उस डाकिये को घेर रखा। थोड़ी देर बाद दो-चार वानर दो फल ले आए और उसके आगे रख दिये और उसे जाने दिया। वह जम्मू के किसी डाकखाने का डाकिया था। जब डाकखाने में डाक ले गया तो डाक मुन्शी (पोस्ट मास्टर) ने पूछा, देर क्यों लगा दी? तब उसने सारा वृत्तान्त सुनाया। डाकिये को क्षुधा पीड़ित कर रही थी, एक फल उसने मार्ग में खा लिया था। उस दिन पोस्ट मास्टर ने उसे कहा, आज काम भी बहुत है और खाने को भी कुछ नहीं, क्षुधा प्रतीत हो रही है, भोजन बना लो, तुम भी खाओ और मुझे भी खिलाओ। उसने कहा, बाबू जी! मैंने तो एक फल खाया है, मुझे तो भूख नहीं लगी, आप भी यह दूसरा फल खा लें। डाक मुन्शी ने दूसरा फल खा लिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब डाकिया डाक लेने गया तो डाक मुन्शी की दाढ़ी, जो कल तक सफेद थी, आज काली मोर देखी। तो डाकिये ने पूछा, बाबू जी! आज क्या खिजाब लगाकर जवान बनने की इच्छा सूझी? और बुढ़ापे में?

डाक मुन्शी ने कहा, नहीं। मैंने तो कभी खिजाब नहीं लगाया, स्पर्श तक नहीं किया। कहा, दर्पण देखें। दर्पण देखा तो नितान्त कृष्ण वर्ण के रोम थे। कहा, मैंने केवल तुम्हारा वही फल ही खाया था और तो कुछ किया ही नहीं। डाकिए ने कहा, बाबू! कल दिन का फल खाया, न रात भूख लगी और न अब है। ऐसा तृप्त हुआ हूं। क्या विचित्र लीला प्रभु की है!

पुत्र! वानरों ने कृतज्ञता प्रकट की। कृतज्ञता का भाव तो पशुओं में भी प्रभु ने रखा है परन्तु वह बुद्धि नहीं जो अपने बन्धन को छुड़ा सकें। सिंह कितना वीर है, परन्तु जब पिंजरे में फंस जाता है तो निकल नहीं सकता। परन्तु मानव अपनी बुद्धि से लोह पाशों को भी तोड़ देता है, पिंजरों से निकल जाता है। घोड़ा हजार रुपये की कीमत का हो, उसे चार आने की रस्सी से बांध दो, वह बंधा खड़ा रहेगा, अपने को छुड़ा नहीं सकेगा। बड़े बलवान् हाथी के ऊपर एक बालक हाथ से अंकुश लगाता है, उसे चलाकर कहीं का कहीं ले जाता है। गाय और उसका बछड़ा दोनों प्यासे हों और गौ के सामने जल पात्र रख दो, वह आप पीने लग जायगी, बछड़े को न पिला सकेगी, चाहे वह बछड़ा तृषा से अत्यन्त व्याकुल हो कर चिल्ला रहा हो, हालांकि प्रेम का उदाहरण वेद ने गौ का अपने वत्स के साथ का दिया है। परन्तु मानव से न सहा जायगा जब तक दूसरे को न पिला लेवे। पशु कितना ही दुःखी क्यों न हो, वाणी न होने से अपना दुःख प्रकट नहीं कर सकता। अपनी आपत्ति और कष्ट

को दूसरे पर जाहिर नहीं कर सकता। वरना वानरों को इतनी देर क्यों डाकिये को घेरे रखना पड़ता ?

मनुष्य ऋतु है

पुत्र--पशुओं में भी मन, बुद्धि, अन्तःकरण होता तो है।

पिता--हां, होता है, परन्तु वह विकसित नहीं होता और न ही वह विकास कर सकते हैं क्योंकि विकास देना तो एक कर्म है जो बिना ज्ञान के नहीं हो सकता और इसके लिये प्राणी में ऐसी इच्छा संकल्प पैदा हो तब कर सकता है। ज्ञान तो दूसरे से प्राप्त किया जाता है और वह वाणी के द्वारा गुरुमुख से प्राप्त किया होता है। पशुओं में वह वाणी भी नहीं और ज्ञान-गुरु के लिये प्रथम सत्कार नमस्कार की विधि है। उनमें न हाथ हैं, न सिर है झुकाने को, वह पहले से ही टेढ़ा और झुका हुआ है। इसे संकल्प से, इच्छा से झुकाना होता है। मनुष्य को इस लिये ऋतु कहा गया है जो संकल्प कर सकता है, कर्त्तव्य का पालन कर सकता है। पशु से तो बंधे बंधाए काम लिया जाता है, वह अपने संकल्प या इच्छा से काम नहीं देता। कभी गाय अपने आप बच्चे के रोने पर दूध का स्राव नहीं करती, न ही घोड़ा अपने आप किसी इच्छित स्थान पर ले जाने के लिये तैयार है। अपने आप तो वह कुराह पर ही चलेगा। उसे मार्ग पर चलाने के लिये तो मनुष्य को लगाम और हण्टर पकड़ना पड़ता है।

शरीर में इन्द्रियों का स्थान

पुत्र—शरीर में जितनी इन्द्रियां हैं उनमें कौन इन्द्रिय श्रेष्ठ और कौन निकृष्ट है ?

पिता—पुत्र ! यह श्रेष्ठ निकृष्ट की बात कहने मात्र की है, वरना वास्तव में सब इन्द्रियां अपने-अपने स्थान पर समान महत्व रखती हैं। कभी-कभी प्रकरण को समझाने के लिये इनकी श्रेष्ठता और निकृष्टता वर्णन कर दी जाती है, वरना तुम ध्यान से देखो तो किसी भी एक इन्द्रिय के न होने से पराधीनता है, और फिर जो इन्द्रिय एक हैं, वह मानो, अधिक रक्षा के योग्य हैं और जो दो-दो हैं, यदि उनमें से एक का भंग हो जावे तो दूसरी से काम चल सकता है। परन्तु जो हो ही एक, यदि वह न हो अथवा भंग हो जाय तो फिर कितनी आपत्ति और कष्ट होगा ? अपने-अपने स्थान पर अपनी उपयोगिता से सब श्रेष्ठ हैं।

वैसे ज्ञानेन्द्रियां, चूंकि वे शरीर के ऊपर के भाग में हैं इस लिए वे श्रेष्ठ हैं और कर्मेन्द्रियां उनसे नीचे हैं, वह उत्तरोत्तर समझो। परन्तु मैं तुम्हें यही कहूंगा कि सब का काम जुदा-जुदा है। मूत्रेन्द्रिय और गुदा सबसे नीचे और निकृष्ट मलमूत्र की थैलियां हैं, परन्तु आंख के दर्द होने में इतना कष्ट नहीं होता जो एक बार मूत्र बन्द होने से प्रतीत होता है।

इसलिये ज्ञानेन्द्रियों में से तो बुद्धि को, जो उनकी अधिष्ठाता देव है, उसे ले लिया है और कर्मेन्द्रियों में वाणी और हाथ को ले लिया है। संसार के समस्त व्यवहार का निर्भर इन तीनों पर ही है अर्थात् मन-बुद्धि, वाणी और हाथ-पैर।

मनुष्य को 'क्रतु' कहा गया है। क्रतु का अर्थ है संकल्प करने वाला और कर्म करने वाला। संकल्प होता है मन में जिस का निश्चय बुद्धि करती है और कर्म करता है हाथ और वाणी से। इन तीनों से ही क्रतु हो सकता है।

"यज्ञो वाव पुरुषः" अर्थात् पुरुष यज्ञ रूप ही है। मनुष्य का जीवन यज्ञमय जीवन है। वेद ने ऐसा भी कहा है, **"अयं ते यज्ञः तनु"**—ऐ जीव! यह शरीर, यह तन तुमको यज्ञ करने के लिये मिला है।

यज्ञ क्या सिखाता है ?

यज्ञ हमें सदा त्याग और दान सिखाता है। दान वृत्तियों से बुराई के त्याग की अवस्था प्राप्त होती है। और इस त्याग से शुभ गुणों की ग्रहण शक्ति प्राप्त होकर अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। और अन्तःकरण की शुद्धि से प्रभु भक्ति में एकाग्रता होकर आनन्द रस आयेगा। अन्त में आत्म-दर्शन होगा।

यज्ञ दान करने के साधन

मनुष्य के पास यज्ञ दान करने के छः साधन हैं :—

(१) तन, (२) मन, (३) धन, (४) अन्न, (५) बल, (६) ज्ञान। जिसके पास जो सामर्थ्य है उसका नित्य प्रति दान करता रहे। उस अपनी सामर्थ्य की शुद्धि निमित्त नम्र और दीन होकर, न कि अहंकार भाव से।

मनुष्य का बड़ा यन्त्र और कवच वाणी और हाथ हैं। चाहे इससे यश प्राप्त करे चाहे अपयश। यही मनुष्य को मुक्त कराने वाले और यही फंसाने वाले हैं। मनुष्य की स्वतन्त्रता को प्रकट करने वाले भी यही दो उसके साधन हैं। संसार के प्रेम का भाजन बनो या घृणास्पद। इसीलिये संध्या के अंग स्पर्श मंत्र में "वाक्" से आरम्भ होकर "करतलकरपृष्ठे" पर समाप्ति हुई।

अनखुट दान

अनखुट दान में पांच प्रकार के दान इन दो वाणी और हाथ के आधीन हैं (तन, अन्न, धन, बल और ज्ञान से दान)। किसी को बांधना हो तो हाथ से बांधेंगे, किसी का बन्धन काटना हो, उसे छुड़ाना हो तो हाथ से छुड़ायेंगे। मानव के शुक्ल और कृष्ण जीवन बनाने के यही दो साधन हैं। इसलिये शास्त्रकारों ने कहा, ऐ मानव! इन दोनों को खूब मांज और चमका। सत्य बोलना (वाणी से) और सत्य करना (हाथ से)।

बरकत वाला हाथ सर्वप्रिय

प्रकट रूप से मनुष्य जितना भी पाप अथवा पुण्य करता है वह सब का सब इन दो वाणी और हाथ से ही करता है। दूसरी इन्द्रियों द्वारा किए हुये पाप

पुण्य प्रकट नहीं होते। इसलिये इनका सम्बन्ध लोक व्यवहार और संसार से घनिष्ठ है। तुम देखते हो कितने मनुष्य ऐसे हैं जिनके हाथ में बरकत नहीं होती। रुपया को तुड़वाया, पता नहीं लगता कि समाप्त हो जाता है। रुपया हाथ में आया और फिर हाथ खाली हो गया। किसी-किसी के हाथ में बरकत होती है। उसके हाथ में रुपया आवे तो बहुत काल तक उसकी सहायता करता है। और वह सदा सुप्रसन्न रहता है। घरों में भी कई देवियां ऐसी हैं जिनके हाथ में बरकत नहीं होती। घर वालों के लिये जितना पकाती हैं, कभी पूरा नहीं होता। सब्जी पहले समाप्त हो जाती है। बहुत बार अपनी रूखी खाती हैं। दो-दो तीन-तीन बार आटा गूंथना पड़ता है। मेहमान आ जावे तो पुनः सब्जी बनानी पड़ती है। और कई एक के हाथ में रस नहीं होता। कोई वस्तु भी बनावें, घृत और मसाला भी अच्छी मात्रा में डालें, तब भी स्वादिष्ट और रोचक वस्तु नहीं बन पाती। और कई देवियां ऐसी होती हैं जो जितना उत्तम पकाती हैं, उनमें इतनी बरकत होती है कि गृहवासी तो एक ओर रहे, मेहमान एक दो जिस समय भी आ जावें, उनको पुन: न आटा गूंथना पड़ता है न व्यंजन पकाना पड़ता है और उनके हाथ में ऐसी रसायन होती है कि बिना घी के ही व्यंजन बनावें तो खाने वाले को बड़ी स्वादिष्ट और रोचक लगती है।

पुत्र—पिता जी! हम गृहस्थी हैं और यह बातें हमारे देखने में आती हैं। कई घरों में हमारा आना जाना है, परन्तु यह समझ में नहीं आती थीं, क्या कारण होता है? हां, यह भी सुनते हैं और देखा है कि अमुक के हाथ में बरकत नहीं, अमुक के हाथ में जस (रस) नहीं है और अमुक बड़ी सुघड़ है, अमुक के हाथ में छिद्र ही हैं, जब भी रुपया हथेली पर आया नहीं कि चटमचटा हो जाता है। तो क्या यह भी पुण्य पाप से सम्बन्ध रखने वाली बात है? चूंकि आंखों से देखा हुआ है इसलिये अविश्वास अथवा तर्क तो नहीं कर सकते परन्तु ऐसे विश्वास भी नहीं जम सकता कि क्यों ऐसा होता है बिना कारण समझे।

पिता—तो क्या यह विश्वास रखते हो कि रूप, बुद्धि, आकार, इन्द्रियों की रचना, छोटी बड़ी सब पूर्व कर्मों के अनुसार प्रभु ने बनाई हैं।

पुत्र—हां पिता जी! यह तो अक्षरशः सत्य मानता हूं।

पिता—तो क्या यह भी मानते हो कि मनुष्य अपने पूर्व संस्कारों के आधीन कर्म करता और फल भोगता है।

पुत्र—हां पिता जी, यह भी सत्य मानता हूं।

पिता—तो यश और अपयश को तुम भोग मानते हो अथवा ऐसे अपने आप मिल जाता है?

पुत्र—यश और अपयश अपने कर्म का ही फल रूप भोग है। बिना कारण या कर्म यह परिणाम नहीं हो सकता।

पिता—तुम यह भी देखते हो कि कई व्यक्ति ऐसे हैं जो थोड़ी में सदा सन्तुष्ट रहते हैं और कई बहुत मिलने पर सदा असन्तोष प्रगट करते हैं, दुःखी

रहते हैं ।

पुत्र—हां, ऐसे बहुत हैं ।

पिता—तो इनका क्या कारण होता है, कोई सिखाता तो नहीं ?

पुत्र—यह सब पूर्व कर्म संस्कार साथ रहते हैं ।

पिता—ऐसे भी तुमने आदमी देखे होंगे जो यह कहते रहते हैं कि मैं तो सबसे भलाई करता हूं परन्तु मेरे साथ बुराई होती है । हां, ऐसे भी आदमी देखे होंगे जो सदा नेकी और भलाई का कार्य करते हैं परन्तु उनकी कभी प्रशंसा नहीं हुई, उनकी निन्दा ही होती है ।

पुत्र—हां, पिता जी ! ऐसे भी देखे हैं जो प्रत्यक्ष परोपकार भलाई के कार्य करते हैं परन्तु फलरूप निन्दा ही सुनते हैं । इसका भी कारण मालूम नहीं हुआ ।

पिता—क्या तुमने यह भी देखा है कि जितना ही कोई पाप करता जाता है वह बढ़ता ही जाता है ? कोई उसको दण्ड नहीं देता । और एक सच्चाई बर्तता है परन्तु सदा दुःखी रहता है ।

पुत्र—हां, पिता जी ! यह सब लोग देख रहे हैं । यह दशः तो संसार में बहुत प्रसिद्ध है ।

पिता—बस समझ लो, इन सब में मनुष्य के पूर्व कर्म पुण्य और पाप के फल भुगतवा रहे हैं और संस्कार अपना प्रभाव दिखा रहे हैं । अब तुम जरा ध्यान से सुनो, यह सब मन की कृपा है ।

मन महत्त्व—मन विद्युत् है

मन कितना प्रबल है, इसकी लीलाओं को देख कर ऋषि कह उठा है, 'केनेषितं पतति प्रेरितं मनः—कि किसकी प्रेरणा से यह मन अपने अभीष्ट विषय की ओर तुरन्त चला जाता है ? ऐसा कौन देव है जिसने इस मन में इतनी शक्ति दी है ? जैसे बाहरी जगत् में विद्युत् है वैसे भीतरी जगत् में मन विद्युत् जैसी वस्तु है ।

विद्युत् और मन की समानता

विद्युत् का सहसा पतन होता है । तो मन भी तुरन्त विषय पर पतन करता है ।

विद्युत् क्षण भर में पूर्व में चमकी तो क्षण भर में पश्चिम में चमक उठती है । इसी प्रकार मन क्षण में पूर्व में तो क्षण भर में पश्चिम में दौड़ पड़ता हे । दूर से दूर देश और काल तक भी अन्तर अथवा बाधा नहीं डाल सकते । हम लोग प्रतिदिन इस मन की गति और लीलाओं को देखते हैं, और समझ नहीं सकते ।

वेद ने कहा है—

यज्जाग्रतो दूरमुपैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति ।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।

यजु० ३४-१

अर्थात्, जागते हुए यह मन दूर से दूर दौड़ जाता है । तो स्वप्न में सोते हुये भी दूर से दूर पहुंच जाता है । समस्त इन्द्रियों को यही घुमाता है । अपने अनुकूल चलाता है । बल्कि मनुष्य को भी घोड़ों की भांति स्वाधीन कर के जहां तहां भटकाता है, भगाता है । पिछले को याद कराता है, वर्तमान को दिखाता है, अगले को सुझाता है ।

मन ही तो मनुष्य को कलाकार, विज्ञ, विद्वान् और वैज्ञानिक बनाता है । संसार में विविध कला-कौशल यन्त्र और आविष्कार मन के ही तो खेल हैं । मन ही तो कभी हंसाता है, कभी रुलाता है, कभी हर्षाता है, कभी तपाता है । सुखी सम्पन्न और दुःखी दरिद्र भी तो यही बनाता है । पापी, पामर, नीच, निकृष्ट और ध्यानी, धर्मात्मा, तपस्वी, महात्मा एवं ऋषि मुनि भी यही कहलवाता है । लोभ, मोह, शोक, क्रोध, राग, द्वेष तथा छल, छद्म, दम्भ, दर्प, भय, भ्रम का ग्रास भी मनुष्य को यही बनाता है । सुख शांति, प्रेम पुण्य, बन्ध मोक्ष भी मन के ही फल हैं । मन ही मनुष्य को धीर, वीर, गम्भीर और ध्यानी, ज्ञानी, दानी, मानी बनाता है । मन ही संसार में अपने पराये का बिछाता है, इत्यादि । मन की अनगिनत शक्तियों और लीलाओं को देखकर ऋषि कह उठता है कि किस देवता ने इस मन को इतनी शक्ति दे रखी है ?

मन के स्वस्थ निर्दोष होने से शरीर भी स्वस्थ और नीरोग रहता है । मन के अस्वस्थ और सदोष होने से शरीर भी अस्वस्थ और सदोष हो जाता है । मन के दूषित होने से अनेक जन सोते हुये बड़बड़ाने लगते हैं । और कई एक महानुभाव निद्रा में ही बिस्तर त्याग कर इधर उधर भटकने लगते हैं । वृक्ष पर चढ़ जाते हैं, बाहर जंगल में निकल जाते हैं । मन ही मनुष्य को उठाता है और मन ही गिराता है । संसार में बड़े-बड़े नेता महात्मा भी मन के कारण बने । मन ही समाज, राष्ट्र तथा देश को बनाता तथा बिगाड़ता है । समाज के विधान अथवा प्रमुख का मन बिगड़ जाय, तो समाज बिगड़ जाता है ।

राष्ट्र अथवा देश के नेता एवं शासक का मन बिगड़ता है तो समस्त राष्ट्र अथवा देश का अधःपतन हो जाता है । भारत के स्वातन्त्र्य नष्ट हो जाने का कारण भी मन ही था । मन के संकल्प विकल्प क्या कुछ कर दिखाते हैं, इसकी गति विधि को जानना बहुत कठिन है और कोई विरला ही जान सके तो जान सके । कर्मों की गति बड़ी गहन है । इसका समझना भी कठिन है । फिर उनसे बने संस्कार जन्म-जन्मान्तर के असंख्यात होने से मनुष्य की समझ से बाहर हो जाते हैं, और वह स्वयं अपने कर्म और फल पर आश्चर्य करता है ।

पुत्र—पिता जी ! मन की शक्तियों का तो आपने विचित्र चित्र खींचा है। वह सच है, परन्तु आपने कहा था कि हाथ, वाणी और बुद्धि यह तीन श्रेष्ठ हैं और इन्हीं पर मनुष्य का भविष्य निर्भर है । मन की गति का उस वर्णन से क्या सम्बन्ध ? यह मेरी समझ में नहीं आया । वैसे तो अच्छा हुआ, मन का चित्र भी मालूम हो गया । है तो मेरी धृष्टता, परन्तु अधिक जानकारी हो जावेगी, कृपया तनिक समझा दीजिये ।

ओ३म्

आठवां सर्ग

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

पिता—पुत्र ! अच्छा ध्यान रखा। शब्दशास्त्री जो ठहरा, शब्द को ही पकड़ लिया। अर्थशास्त्री होता तो गदगद हो जाता।

पहली बात तो यह कि मैंने बताया था कि ६ साधन मनुष्य के पास दान के हैं—तन, मन, अन्न, धन, बल और ज्ञान। वहां पर न हाथ का वर्णन है न वाणी का और न बुद्धि का, मानो तन में सब इन्द्रियों का समावेश हो गया। हाथ और वाणी इन्द्रियां और अंग हैं। अन्न और धन यह तन से कमाये जाते हैं। अन्न में सब खाद्य पदार्थ, फल, मेवा, दूध, घी, सब षड रस और सर्व प्रकार के अन्न शामिल हैं।

धन में पशु धन, द्रव्य धन, सकल दाय सम्पत्ति, जड़ और चेतन, जैसे सन्तान पुत्र भी एक धन है जिसके द्वारा मनुष्य की वृद्धि समृद्धि होती है। वे सब धन में शामिल हैं।

मन भी एक करण है। जैसे चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियां बाह्य हैं वैसे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार अन्तःकरणचतुष्टय समझा जाता है। केवल बुद्धि अथवा चित्त अथवा केवल अहंकार के कहने से अन्तःकरणचतुष्टय नहीं समझा जाता, परन्तु मन के कहने से सब उसमें आ जाते हैं।

वेद कहता है :—

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

यजु० ३४-४

अर्थात्, भूत भविष्यत् और वर्तमान काल में जो कुछ होता है, वह सब इसी मन द्वारा ग्रहण किया है। पांच ज्ञानेन्द्रियों और अहंकार तथा बुद्धि द्वारा जो यह जीवन यज्ञ चल रहा है, इसका जो अधिष्ठाता है वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

मन की जितनी शक्तियां तुम्हें बतलाई गई हैं वह सब इन छः मन्त्रों (यजु० अ० ३४ म० १-६) में आ गई हैं। अब जैसे वहां कहा गया, बल कौशल यन्त्र का आविष्कार मन का ही तो खेल है। परन्तु यह काम तो बुद्धि का है। मन कभी हंसता है कभी रुलाता है। कभी दरिद्र दीन बनाता है, तो यह काम अहंकार का है। परन्तु मन के कह देने पर सब यथार्थ समझ आ जाता है।

जैसे कोई कहे, नेहरू राज्य ऐसा करता है, तो सब यथार्थ समझा जावेगा। परन्तु एक अमात्य का नाम लें तो जिस काम का वह अधिष्ठाता है केवल उसी काम के नाम से उसका नाम लिया जा सकेगा। अन्य अमात्य के काम का उस पर कोई सम्बन्ध न समझा जायगा। परन्तु नेहरू कहने से समझ में आ जावेगा। नेहरू का त्याग पत्र समझा जावेगा। एक भी अपनी स्वतन्त्र इच्छा से नहीं रह सकता। ऐसे ही चित्त, बुद्धि, अहंकार मन के बिना स्वतन्त्र रूप से कोई कार्य नहीं कर सकते और जैसे नेहरू अकेला बिना अन्यों की सहायता के सब कार्य नहीं कर सकता, परन्तु कहा यही जाता है कि नेहरू के बिना कोई काम नहीं कर सकता, ऐसे मन भी अकेले नहीं कर सकता, परन्तु कहा यही जाता है—

यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते।

यजु० ३४-३

अर्थात्, जिसके बिना मनुष्य कोई कर्म कर ही नहीं सकता।

पुत्र—बस बस पिता जी! अब भली प्रकार समझ में आ गया। अब आगे अपने विषय को समझाइये।

□

ओ३म्

नवां सर्ग

सर्वंप्रिय बनाने का मुख्य साधन हाथ

पिता—अब सब से पहले मैं हाथ को लेता हूं। यही पूर्ण नमूना "प्रियं मा कृणु" मन्त्र का है। शरीर में जितने भी अंग और इन्द्रियां हैं, वह अपने दूसरे भाग की सहायता नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ, एक आंख में दर्द है तो दूसरी बहिन आंख उसकी सहायता नहीं कर सकती। उस आंख से मैल भी नहीं निकाल सकती, न उस पर पट्टी बांध सकती है, न उसमें दवाई डाल सकती है। अब बोलो, क्या कान, नाक, जिह्वा, पाद, गुदा, मूत्रेन्द्रिय इस आंख की सहायता कर सकते हैं? उपर्युक्त कामों में कोई काम कर सकते हैं?

पुत्र—नहीं। केवल हाथ ही सब काम आंख के क्या अपितु सब इन्द्रियों के दुःख में सेवा और सुख में सहायता कर सकता है। अब मेरी समझ में आ गया कि जिस प्रकार आंख आंख की सहायता नहीं कर सकती, कान दूसरे कान की सहायता नहीं कर सकता, नाक जिह्वा सहायता नहीं कर सकतीं, न अपनी न दूसरों की। हाथ सारे शरीर का काम कर सकता है।

हाथ के कार्य

पिता—बस पुत्र! तुम समझदार हो। सकल शरीर के पालन, पोषण, भरण और रक्षण का काम केवल हाथ ही कर सकता है। सारे शरीर पर, क्या आगे क्या पीछे, क्या सिर पर ऊपर, क्या नीचे पाद तल तक, क्या मध्य में, सब जगह पहुंच जाता है। सिर, आंख, कान, नाक, मुख अपनी-अपनी मल निकालने में भी असमर्थ हैं। हाथ की सहायता से सब मल बाहर फेंका जाता है और सबकी शुद्धि भी हाथ ही करता है। यहां तक कि मूत्रेन्द्रिय और गुदा चाहे अपना मल आप ही त्याग करती हैं, हाथ का उसमें कोई दखल नहीं, तदापि वह अपनी शुद्धि आप नहीं कर सकतीं। शुद्धि उनकी भी हाथ ही करता रहता है। हां, मूत्र बन्द हो जाये, शौच न आवे, तो भी बिना हाथ की सहायता के न अनीमा हो सकता है और न पिचकारी से मूत्र निकाला जा सकता है। किसी भी इन्द्रिय को यह श्रेय प्राप्त नहीं। पांव में कांटा चुभे तो दूसरा पांव नहीं निकाल सकता। हाथ की कृपा की प्रतीक्षा करता है। उदर में अन्न नहीं जा सकता जब तक हाथ देवता ग्रास तोड़ कर, उठाकर मुख में न देवे। इतना ही नहीं, इसी अन्न भोजन के पैदा करने के लिये भी सारे काम हाथ ही करता है। भूमि में हल चलाना, बीज बोना, घास निकालना, पानी लगाना, रक्षा करना, पके अनाज

को काटना, इकट्ठा करना, गाहना, दाना भूसा से पृथक् करना, भरकर घर ले आना, उसे छड़ना, कूटना, पीसना, गूंथना और पकाना तक इस हाथ को करना पड़ता हैं। हाथ न हो तो शरीर दो दिन में समाप्त हो जावे।

घर के सब काम आग जलाना, बुझाना, झाड़ू देना, लीपना, पूतना, पलंग बिछाना, ओढ़नां, समेटना, कपड़े धोना, पहनाना, सुखाना, नये वस्त्र सीना, फटे की मरम्मत करना, शाला छाया बनाना, टूटे की मरम्मत करना, इत्यादि सब काम हाथ ही तो करता है।

फिर व्यवहार का सारा निर्भर भी इसी पर है। दुकान हो अथवा कार्यालय की लिखापढ़ी, कला, यंत्र शिल्पालय हो, व्यापार वैद्य का कार्य, शासन के सब कार्य हाथ ही करता है। फिर जहां तोल, माप इस हाथ के हाथ में हैं वहां दान, सेवा, उपकार का मदार भी इसी हाथ पर है। सारांश, जगत् में सब कार्य क्रिया रूप में यही हाथ ही करता है। शाबाश आशीर्वाद देना हो अथवा दण्ड देना हो, दोनों इसी हाथ के आधीन हैं। मानो जीव का नाम 'ऋतु' रखा और हाथ का नाम 'कर' रखा। जिनके हाथ कर नहीं अथवा जिन्होंने कर से कर कर्म कर्त्तव्य नहीं दिया, नहीं किया, नहीं पाला, हाथों से रहित पशु योनि में धकेल दिया गया।

संसार के कार्य तो जुदा रहे, परमात्मा के नाम का स्मरण, जप और यज्ञ याग आदि पूजा सिवाय हाथ के नहीं हो सकती। हाथ क्या शक्ति है, प्रभु की अद्‌भुत देन है, कि जहां पिंड में ऊपर, नीचे, दांए, बांए, आगे, पीछे घूम सकता है, सब की सुधि संभाल सकता है, सब के मल साफ कर सकता हैं, वहां समस्त संसार में इसका कार्य यज्ञ द्वारा दी आहुति फैल जाती है।

हाथ का देवता इन्द्र

यह हाथ अब क्या हुआ, मानव शरीर का ईश्वर हुआ। हाथ ऐश्वर्य को पैदा करता है। इसके देवता का नाम इन्द्र हैं। इन्द्र कहते हैं ऐश्वर्यवान् को, चमकने वाले को और अन्धकार पाप नाशक को।

निष्काम कर्म की शिक्षा

मनुष्य के पाप मल कर्म से शुद्ध होते हैं। फिर हाथ से शिक्षा हमको निष्काम कर्म की मिलती है। 'न कर्म लिप्यते नरे'—वेद ने जिसे कहा कि सौ वर्ष तक जीता हुआ कर्म करे। मनुष्य निष्काम करने से कर्म से लिप्त नहीं होता। उसका उदाहरण स्वयं करने वाला हाथ ही हमारे सामने है। घृत शहद अन्य उत्तम पदार्थ हाथ ने बनाये, पकाये और उठा कर खिलाये। फिर क्या किया ? अपने आप को जल से, साबुन से बिल्कुल साफ कर दिया कि हाथ में घृत, शहद, उत्तम पदार्थों की गंध तक न रह जावे, कोई वस्तु उससे चिपटी न रहे। गंदगी को साफ करने पर तो हाथ अपने को मांजता था परन्तु अब पवित्र

वस्तुओं के हाथ पर लगने से भी अपने आपको बिना मांजे नहीं रहता कि गंध भी न रहे। इसका नाम है निष्काम कर्म—"न कर्म लिप्यते नरे"। अब बोलो, यह हाथ सब का—देव सिर का, क्षत्रिय धड़ का, वैश्य पेट का, शूद्र पांव का—प्यारा है अथवा नहीं ?

पुत्र—हां पिता जी ! पूरा-पूरा सोलह आने पूरा इस मन्त्र 'प्रियं मा कृणु' का उदाहरण प्रभु ने प्रत्येक मनुष्य को दिया। और क्रियात्मक रूप से सबसे प्रतिदिन करता है, परन्तु हम इतने बेसमझ बेपरवाह हैं कि आज तक हम न समझ सके।

(इतना कह कर आश्चर्य भी किया और आह भी खींची।)

पिता—क्यों पुत्र ! यह आह कैसी ?

पुत्र—पिता जी ! क्या कहूं ? इधर मैं आपके ऐसे मनन पर आश्चर्य कर रहा था, उधर तुरन्त में दो प्रश्न खड़े हो गये। एक तो जिज्ञासा रूप का था, दूसरा जिज्ञासा तो आप न कहेंगे तर्क कह देंगे। पर मैंने अपने ऊपर पश्चात्ताप किया कि तेरी बुद्धि क्या वृथा प्रश्न करती है ? लज्जित होने लगा।

पिता—नहीं प्यारे, लज्जा न करो। जिज्ञासा के बिना ज्ञान नहीं मिलता और तर्क के बिना दृढ़ निश्चय नहीं होता। तर्क वहां बुरा है जहां भाव दूसरे पर विजय का हो, अपनी शेखी बघारनी हो। यहां तुम्हारा कोई भी प्रश्न मुझे बुरा नहीं लग सकता। कभी पुत्र भी पिता को परास्त करने का भाव मन में ला सकता है ? ऐसा अनुमान और स्वप्न भी नहीं आ सकता। तुम निःसंकोच कहो ! जो कुछ मुझे आता होगा कह दूंगा, न आवेगा तो भी कह दूंगा कि पुत्र ! यह मुझे भी नहीं आता, किसी से चलकर पूछें। मैं तो सत्य की खोज में रहता हूं। उसका आदर मान करता हूं। मैं कभी अपनी आत्मा को धोका देकर दिखावे अथवा मान के लिए गर्त्त में डालना नहीं चाहता। तुम कहो।

पुत्र—हाथ को मांजना, चमकाना की यदि व्याख्या कर दें तो अच्छा रहेगा। दूसरा, हाथ तो जड़ है, इसमें क्या शूरता ? यह तो मन और बुद्धि करती है, जैसे वह हों।

पिता—यूं समझो। एक व्यक्ति शौच हो आया, उसने अपने हाथ से गुदा से मल साफ किया, गुदा को साफ किया, और हाथ अपवित्र हो गये। अब उसने हाथ को मिट्टी से मांज लिया। अब मिट्टी से मांजना हाथ को पवित्र करना है। परन्तु इस मिट्टी सने हाथ से कोई काम नहीं कर सकता, किसी वस्तु को हाथ में नहीं ले सकता। अब उसे उस मिट्टी को भी उतारने के लिये जल से धोना पड़ता है, तब वह चमक जाता है। आध्यात्मिक रूप से हाथ का मांजना, धोना और चमकाना पाप कर्मों का त्याग यह मांजना है। इसमें त्याग का अहंकार और संस्कार दोनों रह जाते हैं। जैसे हाथ को जब मिट्टी से मांजा था तब गुदा के मल के स्पर्श किये परमाणु अभी हाथ में दब गये थे, मिट्टी के ऊपर चढ़ जाने से—मिट्टी का ऊपर आना अहंकार और मल के परमाणुओं का

दब जाना संस्कार समझो । जब पानी से धो दिये, दोनों का त्याग हो गया ।

मल वासना पाप कर्म के त्याग के साथ अहं वृत्ति का भी त्याग हो जाना धोना है और फिर उन हाथों से पुण्य कार्य करना, परोपकार, सेवा, दान, यज्ञ याग आदि करना, उस हाथ को चमकाना है । यदि मनुष्य पाप का त्याग कर देवे और पुण्य न करे तो लोगों में उस की प्रसिद्धि कैसे होगी ? त्याग तो किया अपने अन्दर की बुराइयों का, वह तो हुआ negative । घोड़ा, गधा, गाय मांस नहीं खाते, किसी को नहीं सताते, तो क्या उनकी कोई शूरता नहीं जब वह दूसरे का कार्य करते हैं ? दूसरे का काम संवारता है तो वह उसकी प्रशंसा करता है । ऐसे ही इस नकार वृत्ति के अतिरिक्त परोपकार लोगों को लाभ सुख देवेगा तो चमक उठेगा ।

धनी की तिजोड़ी में एक करोड़ रुपया रखा है । उसे कोई भी नहीं जानता । जब उसमें से एक सौ रुपया दीन दुःखियों में बांटता है तो सैकड़ों आदमी उस का नाम रोशन कर रहे होते हैं । अब दूसरी बात रही—हाथ जड़ है, मन बुद्धि के आधीन है । अब समझो, मन तो चाहता है सहायता करूं, दुःखी हो जाता है । पुत्र के पांव में कांटा लगा है, चिल्ला रहा है । परन्तु हाथ पर फोड़ा है, आपरेशन कराया हुआ है, पट्टी बांधी हुई है । अब विवश है । बुद्धि भी जानती है कि कांटा सूई से निकाला जाता है । सूई भी पास रखी है । अब बोलो, हाथ जड़ तो है परन्तु अब जरूरत हाथ की है अथवा नहीं ? बिना हाथ के मन बुद्धि असमर्थ है कि नहीं ? हाथ कमजोर बलहीन हो, टुण्डा हो तो अन्य किसी की तो क्या अपनी वस्तु भी नहीं उठा सकता ।

कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसे कर्म करें कि जिससे हम को यह इन्द्रियां बलवान् और स्वस्थ मिलें ।

पुत्र—वाह वाह ! बिल्कुल ठीक है । इनकी बड़ी जरूरत है । परन्तु क्या मनुष्य जन्म के कर्म करने से मनुष्य जन्म जब मिल गया तो फिर इन्द्रियों का मिलना तो साथ जरूरी हो गया ?

ओ३म्

दसवां सर्ग

मानव जन्म मिलने से क्या स्वस्थ और बलवान इन्द्रियों का मिलना आवश्यक है ?

पिता—वाह पुत्र वाह ! खूब कही । तुम वेद में कई बार पढ़ चुके होगे—

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतां स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । —यजु० १८-२९

अब समझो, एक आयु लिख देना ही पर्याप्त था अथवा जब कहा "आत्मा यज्ञेन कल्पताम्" तो आत्मा कह देते, फिर शेष क्या रहा ? परन्तु एक-एक इन्द्रिय का नाम गिनाया है । मनुष्य जन्म मिला, शरीर बलवान् है, परन्तु आंख कानी है अथवा कान वधिर है, आंख भींगी हैं अथवा वाणी में बोलने की शक्ति नहीं । ऐसा बोलता है पास वाला भी नहीं सुन सकता । बड़ा बलवान् है परन्तु नाक से श्वास नहीं ले सकता । सब सुख की सामग्री मौजूद है परन्तु मन बड़ा कमजोर है ।

पुत्र ! हर एक इन्द्रिय का अपना-अपना काम है । जन्म अथवा योनि में, कुत्ते की अथवा गधे की अथवा मनुष्य की योनि में तो आत्मा प्रवेश करती है । वह आत्मा अमर अजर होते हुवे भी इन इन्द्रियों के कर्मों के कारण सुख दुःख भोगती और योनि धारण करती है । कुत्ता, गधा, पक्षी, मनुष्य कहलाती है । इन्द्रियां तो वहां भी होती हैं परन्तु वहां हाथ, वाणी और बुद्धि नहीं मिली होती । इन तीनों के कर्म का सम्बन्ध आत्मा के कर्मों के अतिरिक्त और भी है जो उस सुख दुःख और मनुष्य जन्म के सफल बनाने के लिये मिलती है । पशुओं का जन्म भोग तो भोग सकता है परन्तु जन्म सफल नहीं कर सकता ।

अब तुम एक सच्चे दृष्टांत से इस हाथ की आवश्यकता और महानता का अनुमान लगाओ ।

दृष्टांत

एक बार का जिक्र है । लाहौर में एक सज्जन थे जिनका नाम पण्डित जय दयाल जी है । इस समय रोहतक आर्य समाज के पुरोहित हैं । अपनी आंखों देखी घटना अपने एक उपदेश में सुना रहे थे कि मैं निर्धन यात्री लाहौर में

गया, किसी की नौकरी की। बाजार में जाता, धनी लोगों को फल, मेवा लेता देखता तो मेरा दिल भी करता, परन्तु असमर्थ होने से दिल में कुढ़ता और कई बार आवेश में आकर भगवान् को अपशब्द भी कहता कि तुझे शर्म नहीं आती प्रभो! इनको खाने को मन मांगा देता है और मैं तरसता हूं। ऐसे गुजरती रही।

एक दिन शाह आलमी दरवाज़ा के बाहर बाग में घूमता हुआ जा निकला। क्या देखता हूं कि एक तरफ किनारे पर एक चादर बिछी रखी है और एक नवयुवक सिख सरदार बड़ा सुन्दर रूपवान् डाढ़ी के बाल सफेद वहां बैठा है। मेरी दृष्टि पड़ी तो मैंने उससे पूछा, "क्यों सरदार जी! तुमने चादर क्यों बिछा रखी है?"

सरदार—देखते नहीं, मैं पराधीन हूं।

पंडित—क्या पराधीनता है? रूप रंग आकार में बड़े सुन्दर बलवान् हो। अपने हाथ बाहु की कमाई करके खाओ।

सरदार—यही तो पराधीनता है, और मुझे कमी ही क्या थी?

पंडित ने देखा, आश्चर्य में आ गया। बेचारे की दोनों भुजायें नहीं हैं। उससे सहानुभूति करने लगा और पास बैठ गया।

पूछा—तुमको भोजन कैसे मिलता है?

सरदार—कपड़ा बिछा रखा है. जिसे दया आती है, पाई पैसा डाल देता है।

पंडित—फिर उठाते कैसे हो?

सरदार—कोई आदमी आता है वह पैसे जितने होते हैं उठा ले जाता है और मुझे भोजन दे जाता है।

पंडित—फिर खाते कैसे हो?

सरदार—आते जाते को पुकारता हूं, किसी को तर्स आया तो मेरे मुख में ग्रास डालता रहता है।

पंडित—प्यारे! तो बोलो, यह तुम्हारे साथ दया है अथवा न्याय प्रभु का?

सरदार—क्या कहूं। एक बार मुझे अत्यन्त क्षुधा लगी, बाजार में गया। एक बाबू जा रहा था। उसे कहा, बाबू, मुझे गाजर खिला दो, मैं भूखा हूं।

(बेचारे से अंगूर नहीं मांगे, मिठाई के लिये प्रार्थना नहीं की, गाजर मांगी। सेर भर गाजर उसने दो पैसे में ले दी। अब कहां रखे? कैसे खाए? बाबू से कहा, मुझे खिला दो। बाबू ने कहा, मेरा तो कार्यालय का समय है, मैं उधर जा रहा हूं। मुझे तो सरदार! अवकाश नहीं। कहा, फिर इसे कैसे उठाऊं? कहां रखूं बाबू? बाबू को शीघ्र जाना था, इधर-उधर बांट दी। कहा, लो, तुम्हारे भाग्य में नहीं था। मैंने तो ले दिया था। चला गया।)

पंडित—यह प्यारे! दया है या न्याय?

तो सरदार ने कहा, और सुनो। जब तृषा लगती है तो प्याऊ से घड़े को

टेढ़ा करता हूं। आधा उलट पड़ता है। कटोरे में भर जाता है। फिर घुटने टेक कटोरे में मुंह ले जाता हूं, पशु की तरह पीता हूं। जब मुंह नीचे पहुंचता है तो कुत्ते की तरह लक लक कर चाटता हूं और प्रभु से कहता हूं, मुझे गधे की तरह आगे टांगें दे देता तो टेक कर पानी पी लेता।

पंडित—प्यारे! यह दया है अथवा न्याय?

सरदार—क्या कहूं, जब टट्टी पेशाब आता है तो यहां तो नहीं बैठ सकता। दो-दो मील तक सारी आबादी ही आबादी है। दौड़ कर घर जाता हूं। वहां मेरी भगिनी रहती है। उसे कहते भी लज्जा आती है कि क्या कहूं। निर्लज्ज होकर कैसे मेरा नाला खोले? भगिनी समझ जाती है। कहती है, वीर! चिन्ता न करो, मैं आंखें बन्द करके तुम्हारे पाजामा का नाला खोल देती हूं। तब मैं टट्टी बैठता हूं। रोता हूं कि भगिनी गौ समान है। लोग गौ, ब्राह्मण, कन्या का कितना सम्मान करते हैं! मैं निर्लज्ज भगिनी से गुदा, टट्टी साफ कराता हूं। और कौन करे? पर लाचार हूं।

पंडित—प्यारे! यह दया है अथवा न्याय प्रभु का?

सरदार—और क्या कहूं! पीठ पर फोड़ा निकल आया। मैं रोता और कहता, प्रभो! पशुओं को पूंछ दी, मुझे पूंछ लगा देता तो मैं मक्खियां तो उड़ा सकता। सख्त तंग करती हैं। ज़ार-ज़ार रोता हूं। खुजली होती है, दीवार के साथ मसलता हूं तो चीख निकलती है। हाय प्रभो! कैसा बनाया मनुष्य?

बोलो प्यारे! हाथों से कुछ न किया। अब यह दशा है।

पुत्र—आ...हा! क्या विचित्र हाथ प्रभु ने बनाया! एक हाथ वाले को अथवा जिसके हाथ न हों, कई रोग हो जाता है तो उसे कितनी पराधीनता आती है! जिस बेचारे के दोनों बाहु और हाथ न हों, शोक! शोक! क्या जीवन हुआ! फिर कोई उपकार नहीं कर सकता बिना हाथ के।

पुण्य पाप की भूमि मन, परन्तु यन्त्र हाथ

पिता—पुत्र! संसार में जितने पाप हैं वह सब मन बुद्धि में तो उपजते हैं। तब तक वह वृत्ति या वासना या विचार के रूप में अपने अन्दर ही अन्दर रहते हैं। जब वह इन्द्रियों में आते हैं तो पाप का रूप धारण हो जाता है। परन्तु सब इन्द्रियों के पापों से अधिक से अधिक संख्या में जो पाप होते हैं वह वाणी और उस से अधिक हाथ से होते हैं।

बालकपन से ही जो हिंसा के दोष हैं वह वाणी और हाथ द्वारा होने आरम्भ हो जाते हैं, और किसी भी इन्द्रिय से बालकपन में पाप आरम्भ नहीं होते। वह समझ के साथ-साथ बढ़ते हैं, परन्तु हाथ और वाणी के दोष बिना समझ के ही होने आरम्भ हो जाते है।

पुत्र—यह कैसे? पाप का विचार जब तक मन में न आए तब तक पाप हो कैसे सकता है?

पिता—यही बात तो पुत्र ! अध्ययन करने की है । तुमने छोटे बच्चों को देखा होगा अपशब्द बोलते, कठोर और असत्य बोलते, और तुमने यह भी देखा होगा कि बच्चे खेल के रूप में च्योंटिम कौड़े मारने लग जाते हैं । एक दूसरे को खेल में, हंसी विनोद में चक चूंढियां लगाते हैं, आग, कीचड़, मिट्टी फेंकते हैं । तुम ने यह भी देखा होगा किसी-किसी बच्चे को हर समय उपस्थ इन्द्रिय को हाथ लगाते हुवे, और बालकपन में ही कइयों को हस्त मैथुन का स्वभाव पड़ जाता है, बिना कारण स्वभाव बन जाता है । बच्चों को भांडे बरतन तोड़ने की, जो चीज सामने आये, कागज, दर्पण, खिलौना, सब थोड़ी देर में हाथ से तोड़ देते हैं । यहां तक कि करेंसी नोट सौ-सौ रुपये के बच्चों ने फाड़ दिये और माता-पिता को परेशान किया । एक कसाई का बच्चा अपने पिता को छोटे-छोटे लेले, भेड़ों के बच्चों की खाल उतारने के लिये प्राणान्त करते देखता रहा । एक दिन पिता बाहर गया हुआ था । वह अपने छोटे भाई से खेल करने लगा । उसे लिटा दिया और छुरी लेकर उसके गले पर चला दिया । वह बेचारा चीखा और माता के दौड़ कर पहुंचने से पहले ही मर गया ।

बच्चे को तो आराम आता ही नहीं । जहां बैठे, हाथ से कोई न कोई चेष्टा करता ही रहेगा ।

युवा वृद्ध भी इसी का शिकार हैं

युवा वृद्ध भी रिक्त हस्त नहीं बैठेगा । तुम ने देखा होगा, तृणासन पर जब मनुष्य बैठता है तो बिना कारण अपने स्वभाव वश आसन से, दरी से तृण तथा धागे उखेड़ता रहता है । बच्चे पाठशालाओं में पेन्सिल, लेखनी, कागज आदि की चोरी भी हाथों से कर लेते हैं । वयोवृद्ध भी मार्ग में चलते-चलते जहां मटर, खजूर का क्षेत्र आ जाता है, कमाद (ईख) खड़ा होता है, खजूर, बेर पकी होती हैं, कोई देखने वाला न हो तो हाथों से ही चोरी तोड़ लेते हैं ।

व्यावहारिक पाप के यन्त्र

हाथ के पाप, व्यावहारिक पाप जितने भी होते हैं वह सब वाणी और हाथ द्वारा ही होते हैं । मानो वाणी और हाथ व्यावहारिक पाप के यन्त्र हैं । कम लिखना, असत्य बोलना, छल, कपट, दम्भ से बोलना, वस्त्र अन्न दूध का कम मापना, तोल में न्यूनाधिक तोलना, चतुराई दिखाकर मापना और तोलना, घूंस लेना, स्तेय, सेंध लगाना, मार्ग में आते-जाते को लूटना, चीजों की मिलावट करना, कुछ का कुछ दिखाना, चीनी में, घृत में, दुग्ध में, अन्न में, मेदा में, यहां तक कि काली मिर्च और सुपारी में मिलावट कर दी गई, यह सब हाथ ही के खेल हैं ।

अभियोग में डिगरी और खारिज (निकासनी), फांसी के तख्ते की आज्ञा और दोष विभक्ति न्यायाधीश हाथ ही से करता है ।

किसी को दाग लगाना हो, चरित्र को दूषित करना हो, निशाना बनाना हो तो वाणी से, और शारीरिक दाग निशान बनाना हो तो हाथ से। वाणी का लगाया दाग हर समय प्रगट नहीं होगा, परन्तु हाथ से लगाया दाग तो प्रकाशमान दिवस के समान प्रकट होता है। जहां पाप इसके बहुत है वहां पुण्य भी इसके बहुत हैं। अपितु सारे पुण्य कार्य लगभग इसी के द्वारा ही होते है।

मन बुद्धि स्वयं क्रिया नहीं कर सकते

जयपुर रियासत के पिलानी ग्राम में मैं यज्ञ वेदी पर उपदेश कर रहा था। एक बालक ख्याली राम नाम का, जो नवीं कक्षा में पढ़ता था, उपदेश में आ बैठा। मुझे तो पता न लगा परन्तु अल्प समय के पश्चात् मेरा चित्र खेंचकर मेरे सामने ले आया। मैंने कहा तुमने कैसे और कब बना लिया ? कहा, मैं उपदेश में आया और आपको देखता रहा और इधर मेरा हाथ ऐसे चित्र बनाता गया। कितने व्यक्ति हैं हम में से जो एक लकीर भी सीधी नहीं खींच सकते। उसके मन और बुद्धि की एकाग्रता ने इस चित्र को अपने अन्दर हाथ में चलने की शक्ति दी। मन बुद्धि तो स्वयं कोई क्रिया नहीं कर सकते। वरना सब कोई कर लेता। हाथों में कोई विचित्र शक्ति थी जो अपने आप मन बुद्धि का प्रतिबिम्ब ले ले कर चलती रही।

द्वार पर भिखारी आया तो झट हाथ ने उसे रजाया और वह अपने दाता का यश कर रहा है।

हाथ देवता

यही हाथ देवता है जो कहीं तो नन्हीं-नन्हीं च्योंटियों के छिद्रों में तिल शक्कर बिखेर रहा है और कहीं कव्वे कुत्तों को रोटी के ग्रास बना-बना कर डाल रहा है। समूह के समूह उस के द्वार पर इर्द-गिर्द एकत्र हैं। कहीं यह हाथ देवता पक्षियों के लिए जल और चीना बाजरा बखेर रहा है, कहीं पशुओं और मनुष्यों के लिए शबील और प्याऊ से सन्तप्त शरीरों को शांत कर रहा है। गौ, वृषभ, अश्व, खर, उष्ट्र, हस्ति, मेष, अजा इन्हीं हाथों की कृपा से घास दाना चर रहे हैं। कहीं हाथ देवता माता-पिता वृद्धों के चरणों को दबा रहा है। श्रांत पुरुषों का थकान निकाल रहा है। कहीं यह हाथ महात्माओं को भोजन आच्छादन करा रहा है। चिकित्सालयों में अनेक रोगी, दुःखी कराह रहे हैं और यही हाथ उनको स्वास्थ्य प्रदान कर रहा है। नगर की गन्दी सड़ी नालियों और गली कूचों से गन्द के ढेर भी यही हाथ देवता साफ करके जनता को जीवन दान दे रहा है। नापित, धोबी के हाथ कितनी मैल उतार मनुष्य को उज्वल बना रहे हैं। लोहार, तरखान के हाथ अनेक प्रकार की विश्रामशालायें मनुष्य के लिए तैयार कर रहे हैं। टांगा, घोड़ा, मोटर और गाड़ी का चलाना, घन्टों में सैंकड़ों मील पर लाखों मनों के भार को ले जाना पहुंचाना, यह सब हाथ

ही के चमत्कार हैं। यह सब कलायें, शिल्पशालायें हाथ ही निर्माण करता है। परन्तु इसके अतिरिक्त संसार के कार्यों को पूरा करता हुआ यही हाथ यज्ञ, याग, जप, जाप कर शांति और सुख की सामग्री की उत्पत्ति कराता है।

पुत्र—पिता ज़ी ! ऐसे तो पता लग रहा है कि संसार का कोई व्यवहार बिना हाथ के पूर्ण नहीं होता। यही हाथ ही करता है। परमार्थ और स्वार्थ की पालना भी इसी से होती है। ऐसा कौन सा कर्म होगा जिस से मनुष्य को ऐसे हाथ मिलें जो सब काम कर सकें ?

□

ओ३म्

ग्यारहवां सर्ग

बरकत वाला हाथ कैसे मिले ?

हर एक इन्द्रिय का देवता जुदा-जुदा है। दिव्य शक्ति के लिये अपने देवता की शरण लो और उसे अर्पण कर दो।

पिता—पुत्र ! नियम की बात यह है कि परमात्मा ने जीवों के सुख, शान्ति और आनन्द के लिये सर्वप्रथम देवताओं की सृष्टि रची। जो मनुष्य इन देवताओं को अपने अनुकूल कर लेता है वही सुख पाता है। हर एक इन्द्रिय का अपना-अपना देवता है। जो इन्द्रिय जितना अपने देवता को अपनाती है, उसका आदर करती है, उसमें अर्पण हो जाती है, उतनी ही उस इन्द्रिय में दिव्य शक्ति आ जाती है। वह दिव्य शक्ति ही स्वभावसिद्ध फिर बिना किसी परिश्रम के काम करती रहती है। जो काम स्वभावसिद्ध होता है उसमें अहंकार भी नहीं आता और अनायास उससे होता जाता है।

हाथ का देवता इन्द्र

ऊपर भी कह आए हैं कि हाथ का देवता इन्द्र है। हाथ का स्थूल कार्य है लेना और देना—ग्रहण और त्याग। देने-लेने की वैदिक परिभाषा "हवन" है जो 'हू' धातु से बना है।

प्रभु ने यह सारी सृष्टि यज्ञ द्वारा रची। वेद में आया है—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ।।

यजु० ३१-६

अर्थात्, उस यज्ञ स्वरूप प्रभु से सब दध्यादि भोगने योग्य वस्तुएं भली प्रकार उत्पन्न हुईं, और जो वन के सिंह आदि और ग्राम के गौ आदि पशु हैं और जो उन वायुओं के तुल्य गुणों वाले पशुओं को उत्पन्न करता है, उस को सब मनुष्यों को जानना चाहिये।

गीता में भी भगवान् कृष्ण ने कहा है—

सहयज्ञाः प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।

गीता ३-१०

प्रजापति परमात्मा ने समस्त प्रजाओं को यज्ञ से उत्पन्न करके कहा कि इस यज्ञ द्वारा तुम बढ़ो। यह यज्ञ तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति के लिए कामधेनु है। अर्थात् जो शुभ कामना इससे सिद्ध करना चाहोगे, वही प्राप्त होगी।

यह समस्त देवता परमेश्वर का यज्ञ ही कर रहे हैं। इस यज्ञ का देवता इन्द्र है और यज्ञ बिना हाथ के नहीं हो सकता, यज्ञ और हाथ चूंकि दोनों का देवता इन्द्र है। इन्द्र कहते हैं ऐश्वर्यवान् को। संसार के सब ऐश्वर्य का दाता इन्द्र है। बस समझ लो कि हाथ के अन्दर इन्द्र शक्ति, इन्द्र की प्रसन्नता से लानी चाहिये। जब हाथ में दिव्य शक्ति आ जावे तो मान लो कि इन्द्र देवता जाग्रत होकर उस हाथ को चला रहा है। अब उससे कभी पाप नहीं होगा। और साथ ही इन्द्र का अर्थ चमकने वाला चमकाने वाला है, ऐसे उस मनुष्य का हाथ संसार भर में चमक जाता है।

हाथ और वाणी

दूसरी बात—हाथ आज्ञा का पालन करता है। वाणी की वाणी बोली और हाथ तुरन्त खड़ा हो गया। तुम देखते हो, जब तुम अथवा कोई बोलने खड़ा होता है तो हाथ अनायास उन शब्दों के साथ कई प्रकार से कई रूप में अपनी अंगुलियों को पेश करता रहता है। वह वास्तव में Short-hand की तरह आकाश में तरंगें उत्पन्न कर रहा होता है।

सरस्वती देवी

वाणी का देवता सरस्वती है। सरस्वती कौन है ? वेद वाणी को सरस्वती कहते हैं। वही वाणी कहलाती है। परन्तु वह प्रभु की वाणी है, निर्दोष और सत्य और मधुर, संसार का कल्याण करने वाली है। ऐसे मनुष्य अपनी वाणी को बनाएँ। वाणी के पाप और पुण्य बड़े विलक्षण हैं।

फिर हाथ का महत्व

प्यारे पुत्र ! हाथ की महिमा का क्या वर्णन करूं ! सिंह, अजगर भी मनुष्य के हाथ से छूटने वाली गोली से भय खाते हैं, कांपते और भागते हैं। वह मनुष्य की बुद्धि से नहीं डरते, हाथ से ही डरते हैं, जो मार भी देता है और फांस भी लेता है। वानर ऊधम मचा देते, कुत्ते काट खाते यदि मनुष्य के पास हाथ न होता। वह जब भी डरते हैं तो मनुष्य के हाथ से चलाये बट्टा और लठ से डरते हैं। मक्खी, मच्छर, दुष्ट हिंस्र जन्तु सब हाथ की कृपा से दूर भगाये जाते हैं। यह हाथ सब आततायीयों को मसल और कुचल डालता है। यही हाथ ही तो है जो बुद्धि की सहायता करता है। ऐसी-ऐसी अन्वेषणाएँ करता है कि चोर चोरी ही न कर सके।

मनुष्य अल्पज्ञ है, भूल जाता है। बुद्धिमान् मनुष्य भी विस्मृति कर जाता

है। वाणी से कही हुई बात भी याद नहीं रहती, इन्कारी हो जाता है। परन्तु शताब्दियों के बीत जाने पर भी हाथ का लिखा हुआ माननीय, प्रमाणित और पूजा जाता है।

क्रिया ज्ञान का और हाथ वाणी का विश्वास कराने वाले हैं

वाणी तो परमेश्वर की प्रमाण है, परन्तु उसे भी समय आया कि हाथ से लिखना पड़ा। परन्तु मनुष्य की वाणी प्रमाण नहीं, हाथ ही प्रमाण है। यों कहो कि वाक्य प्रमाण नहीं, कर्म प्रमाण हैं। परमात्मा का कर्म पहले प्रकट हुआ, और वाणी वाद में प्रकट की थी। वह पहले भी अनादि परन्तु गुप्त थी, परमात्मा के ज्ञान में थी। तो क्रिया ही ज्ञान का, हाथ ही वाणी बुद्धि का विश्वास कराने वाला है।

जंगलों में, खेतों और वाटिकाओं में मानव स्वयं इतना जागरण नहीं कर सकता। एक लकड़ी खड़ी करके, मनुष्य का ढांचा बना, सिर काले लोटे का बना, हाथ में धनुष बाण बना देता है। जंगली हिंस्र पशु दूर से मनुष्य के हाथ में वाण छूटने वाला देख कर भाग जाते हैं, वरना सारी खेतियां रात को उजाड़ देते।

व्यष्टि समष्टि का सम्बन्ध

व्यष्टि कोई भी कर्म बिना समष्टि शक्ति की सहायता के नहीं कर सकता। यदि यह भाव व्यक्ति का हो जाय कि मेरी जो भी इन्द्रिय जो काम करती है वह समष्टि के अर्पण के लिए करती है तो वह निर्लेप हो जाय। हाथ के करने के सब काम ही हैं, सब में ऐसी भावना बनाना बड़ी विशाल और सद्बुद्धि का काम है। परन्तु एक काम ऐसा है जो चाहे बुद्धि की भावना बनाए अथवा न बनाए, वह नैसर्गिक रूप से समष्टि को पहुंच जाता है।

हवन यज्ञ की विलक्षणता

ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ९३ के मन्त्र संख्या ७ से ११ तक में जो भाव दर्शाया गया है वह यों है—

हवन करने के लिए ईश्वर की आज्ञा—प्राणी मात्र के हित के लिए सबसे बड़ा उपकार "हवन" है। अन्य सब यज्ञों से यह सस्ता है। हर एक प्राणी कर सकता है, और यज्ञ बिरले ही कर सकते हैं। अतः प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है कि अग्निहोत्र नित्य करे और मनुष्य चोला को सफल बनाए, वरन् वह पशु समान ही रह जायेगा।

हाथ के पोरुओं की शक्ति

मनुष्य के हाथ के पोरुओं में परमेश्वर ने क्या शक्ति भरी है! जो इस

अपने हाथ की शक्ति को समझ गया है, वह क्या-क्या चमत्कार कर दिखाता है ! एक हिपनाटिस्ट (Hypnotist) अपने हाथ के फेर देने से, कैसा भी मनुष्य क्यों न हो, अपने भावों और अपने शब्दों के मुख से विकसित होने पर उसी प्रकार का बन जाता है, इस प्रकार की चेष्टायें करने लग जाता है, यहां तक कि एक विशाल सभा में एक तमाशा सा बना देते हैं ।

जालन्धर में एक बार महोत्सव हो रहा था । वहां एक हिपनाटिस्ट को अपनी शक्ति का चमत्कार दिखाने को कहा गया । तो कोयलों का थाल भर रूमाल से ढांक कर भरी सभा में बड़े से बड़े पदाधिकारी और सेठ को देकर उसने कहा, "लो सेठ जी ! इसमें बढ़िया मिठाई रसगुल्ले हैं ।" सेठ ने कपड़ा रूमाल उतारा और खाने लग पड़ा और कहने लगा, बड़े स्वादिष्ट हैं । दूसरे लोग देखकर हंसने लग पड़े । परन्तु उसे कुछ पता नहीं लगा कि क्यों हंस रहे हैं । फिर जब हिपनाटिस्ट ने हाथ फेरकर कहा, "सेठ जी ! अब बस करो" तो उसने जब देखा कोयले थे । बड़ा लज्जित हुआ ।

एक बार काश्मीर नरेश बड़े चिन्तातुर हो गये । कारण मालूम न हो सका । मन्त्रियों तथा अन्य राज्य दरबारियों ने भरसक प्रयत्न किया परन्तु वह मलिनता न गई । डाक्टरों, हकीमों, वैद्यों ने भी देखा परन्तु कोई औषधि सफल न हुई । वह हिपनाटिस्ट वहां पहुंचे तो उन्होंने दरबार लगवाया । वहां सब मंत्री, धनी-मानी, दरबारी, अधिकारी महाराज के दरबार में उपस्थित थे । हिपनाटिस्ट ने एक बड़े कप्तान पर हाथ फेरकर कहा, वाह साहब, आप तो बड़ा अच्छा नाचना जानते हैं, तो वह सचमुच नाचने लग पड़ा । महाराज हंस पड़े । ऐसे हंसे कि चिन्ता की रेखा तक न रही कि कहीं थी ।

त्राटक साधे हुये मनुष्य अंगुली के स्पर्श अथवा समीप ले जाने से विचित्र चमत्कार दिखाते हैं । एक बार चन्दोसी में एक योगी (अपने को कहने वाले) साधना कराने लगे । किसी भी लड़के को अंगुली सामने स्पर्श कराते तो लड़के विलक्षण प्रकार से कृष्ण और गोपियों का खेल करने लग जाते और घण्टों वह दौड़ धूप करते । उनको पता ही न रहता, न थकते । एक बार एक संन्यासी महात्मा को बिठाया और उसे कहा कि आप सामवेद का गान करो । वह साम गान करने लग पड़े । और ऐसा गाया कि सब अवाक् रह गये । वह स्वयं आश्चर्य में था कि मैं कैसे गाने लग गया, और फिर सामवेद जिसके स्वर, छन्द, तान का ज्ञान ही नहीं । एक बार उसने समाधि में ऐसे बिठा दिया कि घन्टों बराबर एक आसन पर डटे रहे ।

मिसमेराईजर (Mesmeriser) लोग हाथ फेरने से अनेक रोगियों को रोग से मुक्त कर देते हैं । पुत्र ! यह हाथ तो सचमुच स्वयं इन्द्र है । इन्द्र देवता की शक्तियां वेद शास्त्रों में अद्भुत कही जाती हैं । यह अपने देवता का तदाकार

बन सकता है जब इसके काम ऐसे साधे हुये हों। ऐसे अद्भुत यन्त्र से कभी भूलकर भी पाप नहीं होने देना चाहिए।

भीखमंगे बेचारे दर-दर हाथ ही तो फैलाते हैं। अमीर लोग तो धूप से बचने के लिए हाथ के ही सहारे छाता ताने होते हैं। गरमी में अन्दर आराम करते हैं तो निर्धनों के हाथ की सहायता से पंखा खिचवा विश्राम करते हैं।

हाथ और बुद्धि

पुत्र! यद्यपि बुद्धि बड़ी चीज है, इससे मनुष्य की कीमत बढ़ती है, शान बढ़ती है, परन्तु स्वर्ण जिस प्रकार सबसे बढ़िया रत्न है परन्तु क्षुधा के समय उसका कोई मूल्य नहीं, वहां तो रोटी की कीमत है, ऐसे ही हाथ की तो बिना बुद्धि वाले पागल को भी जरूरत है। बिना बुद्धि अनेक व्यक्ति जीवन यापन कर रहे हैं परन्तु हाथ के बिना किसी का निर्वाह कितनी पराधीनता है! इसलिये मैं तो यही कहूंगा, **हाथ का कृपण कोई भी मानव न बने।** पैसा देने को नहीं, न सही; रोटी देने को नहीं, न सही; सेवा तो कर सकता है। सत्संगियों की जूतियों को साफ करके एक ओर रख सकता है। मन्दिरों में झाड़ू लगा सकता है। लीप कर सुन्दर आकर्षण बना सकता है। जैसे डूबते को हाथ ही निकालने वाला है, ऐसे हाथ की सेवा करने वाला, हाथ को सदा खुला और उदार बनाने वाला, मानो अपने को डूबने से आप ही बचा रहा है।

कई बार तुमने देखा होगा, बच्चे स्वाभाविक रूप से कुत्तों को रोटी फेंक देते हैं और बार-बार मां से मांगते हैं डालने के लिये। जब कोई भिखारी द्वार पर ध्वनि लगाता है तो बच्चे का तुरन्त मन चाहता है कि मैं ही दे आऊं और माताएं भी बच्चों का संस्कार बनाने के लिये उनके नन्हें हाथों में आटा देकर भिखारियों की झोली में डलवाती हैं। वेद भगवान् भी बलपूर्वक कहता है, सौ हाथ से कमाओ और हजारों हाथों से दान करो।

शतहस्त संकिर सहस्रहस्त समाहर।

—अथर्ववेद

भाग्यवान् मनुष्य घर में बैठा हुआ है और सैंकड़ों स्थानों से सैंकड़ों साधनों से धन पर धन उसके पास आ रहा है। एक भाग्यशाली दुकानदार एक हाथ से तोलता है परन्तु सैंकड़ों हाथों में देता है। सैंकड़ों हाथ उसके एक हाथ में पैसा पर पैसा देते हैं। यह एक रहस्य की बात है। इसे जितना गहरा सोचें उतनी अधिक प्राप्ति होती है।

इसलिये भगवान् का भक्त भगवान् से कहता है:—

सद्रिवः उभय हस्तया अभर।

—सामवेद

हे आवरण परदा फाड़ने वाले इन्द्र प्रभो ! मुझे दोनों हाथों से भर दे। एक हाथ से तो इस संसार के लिए है संग्रह करने की शक्ति, दूसरा हाथ है परलोक के लिये देने की दातृ शक्ति । इन दोनों से भर दे ।

कई आदमी ऐसे हैं जिनकी धारणा बनी हुई है कि जब तक अपने हाथ से गौ के मुख में ग्रास न दे लें, पानी नहीं पीते। कई ऐसे हैं जिनकी धारणा है कि जब तक इतना धन दान न कर लें आराम नहीं करेंगे। कई एक ऐसे हैं कि जब तक अपने हाथों से अतिथि को खिला न लेवें, अन्न नहीं खाते । कई ऐसे हैं जब तक च्योंटी मकोड़ों के छिद्रों में अथवा कुत्तों को अन्न न डाल आवें, कार्य आरम्भ नहीं करते ।

ओ३म्

बारहवां सर्ग

वाणी का महत्व

ओ३म् वाक् वाक् । ओ३म् करतलकरपृष्ठे ।।

पुत्र—सन्ध्या में हवन में आरम्भ में ही वाक् वाणी से क्रिया होती हैं । निस्संदेह वाणी ही मनुष्य का स्वत्व है । हाथ की इतनी सुविस्तृत महिमा देखते हुवे भी, पहले ज्ञान बुद्धि में जमा न था । मेरा विचार है, ऐसे ही वाणी के विषय में भी बैखरी बुद्धि से हम ज्ञान रखते हैं, एकाग्र बुद्धि से इसे भी विचारा जाय तो शायद हाथ की तरह वाणी का भी अधिक मूल्य जान पड़े । हमें तो अब तक भी यथार्थ रूप से समझ में नहीं आया था कि 'वाक्' से आरम्भ हुआ और 'कर' पर सन्ध्या की क्रिया समाप्त क्यों हुई, जैसा आपने पीछे संकेत किया। अब वाणी को दो बार कहने के भी पण्डित लोग कई अर्थ और विचार पेश कर देते हैं । यद्यपि वह भी सत्य प्रतीत होते हैं, तदपि आप कैसा मानते हैं अथवा विचारा हुआ पेश करते हैं ?

पिता—तुमने 'सन्ध्या सोपान' में पढ़ा नहीं ? वाक् वाक् दो वाक् से ज्ञान का आरम्भ और वाक् पर कर्म की समाप्ति ।

[नोट :—"सन्ध्या सोपान" श्रीयुत् पूज्य महात्मा प्रभु आश्रित जी की सन्ध्या पर अपूर्व कृति है ।]

सर्वप्रथम माता-पिता अथवा गुरु बालक को जब भी कोई बात सिखायेगा और समझायेगा तो पहले वाणी से ही शब्द द्वारा कहेगा और समझायेगा, उपदेश देगा अथवा ज्ञान करायेगा । इस लिए ज्ञान का आरम्भ हुआ ।

और कर्म की समाप्ति कैसे हुई ? संसार में कितने ही शुभ कर्म हैं । लोग उन्हें करते हैं, परन्तु उनमें सबसे कठिन सत्य बोलना है । सत् कर्म करने वाले अनेक मानव मिलेंगे परन्तु सत्य बोलने वाला, सत्यवादी विरला ही आपको प्रतीत होगा । बोलना कर्म है, सत्य बोलना अन्तिम धैर्य है कर्म का । जो सत्य बोलता है, बस फिर उसी की जय होती है । शास्त्रकारों ने कहा, "सत्यमेव जयते नानृतम्"—सत्य की जय होती है, झूठ की नहीं । इसलिये कर्म की समाप्ति वाक् पर है, दो बार वाक् आया ।

परमात्मा की प्रसन्नता-अप्रसन्नता

एक बड़ी ध्यान देने योग्य बात यह है कि आंख से, कान से, हाथ से, टांगों से संसार का कोई काम कर लो, उसमें प्रभु की अप्रसन्नता न होगी । उदाहर-

णार्थ—एक आदमी आंखों से बच्चे को देख रहा है, स्त्री को देख रहा। उसमें परमेश्वर के सम्बन्ध में कोई हर्ज नहीं रहा, न प्रसन्नता न अप्रसन्नता। कानों से व्यावहारिक बात को सुन रहा है, उसमें परमात्मा की कोई प्रसन्नता अप्रसन्नता नहीं। परन्तु वाणी से बोलो। यदि असत्य बोला, बोला तो व्यवहार में किसी मनुष्य के साथ, परन्तु परमात्मा की अप्रसन्नता अवश्य होगी। सत्य बोला तो परमात्मा प्रसन्न होंगे। वाणी से कुछ भी बोला जाय, उसमें परमात्मा की प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता अवश्य शामिल होगी।

वाणी और हाथ का त्याग स्वाभाविक

जैसा हाथ को साफ करने, मांजने तथा चमकाने की आवश्यकता है, ऐसे वाणी-जिह्वा को भी सब कोई तुरन्त धोता साफ करता है जब इससे कुछ स्पर्श हो जाय। चाहे उत्तम से उत्तम पदार्थ खाओ, सुगन्धित खाओ, जिह्वा को तो उसी समय कुल्ला से साफ करना पड़ता है, नहीं तो रोग उत्पन्न कर दे यदि साफ न की जावे। जैसे हाथ काम करके साफ किया जाता है, वैसे ही जिह्वा भी साफ की जाती है। इन दोनों का त्याग बिना आसक्ति के स्वाभाविक है। ऐसे ही मनुष्य इनसे शिक्षा लें।

वाणी के कर्म

वाणी मनुष्य के आन्तरिक विचारों को उत्था करती है, मनुष्य की श्रेष्ठता, निकृष्टता को प्रगट करती है। जब तक मनुष्य बोलता नहीं, वाणी नहीं हिलाता, उसके गुण-दोष का किसी को भी ज्ञान नहीं हो सकता।

फारसी के प्रसिद्ध कवि शेख सादी ने कहा है :—

ता मर्द सुखुन म गुफ़ता बाशद।
ऐबो हुनरश निहुफ़ता बाशद॥

अर्थात्, जब तक मनुष्य बोलता नहीं, उसके गुण-दोष छिपे रहते हैं।

इसी भाव को और प्रकार से संस्कृत के कवि ने प्रकट किया है—

१ काक: कृष्ण: पिका कृष्णा, काक: काक: पिका पिका॥ ४

अर्थात् कव्वा भी काला है, कोयल भी काली है। आकार और वर्ण में कोई भेद नहीं। परन्तु जब बसन्त ऋतु आती हैं और कोयल बोलती है तो कव्वे और कोयल में झट पहचान हो जाती है। वह गाती है, वह कां कां करता है।

संसार का व्यवहार सारा इसी के द्वारा होता है। परमात्मा की महिमा को दर्शाने, किसी की प्रभु में, मालिक में प्रीति जोड़ देने का भी बड़ा साधन यही है। इसी वाणी में आकर्षण और विकर्षण की शक्ति है। इसके बोल में

जादू है, प्रेम और घृणा। चाहे तो ऐसा एक कर दे कि जी-जान से वारी (न्योछावर) होने लग जाय, चाहे तो ऐसा फाड़ दे कि राज्य के राज्य नष्ट-भ्रष्ट कर दे। साधारण नहीं। बड़ी महान् आत्मायें इसके दोष में चकरा गईं।

द्वापुर में युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ में दुर्योधन आता है। थल में जल और जल में थल की भ्रान्ति होने पर द्रौपदी कह उठती है कि "अन्धे की सन्तान अन्धी" और इन कटु शब्दों के कारण १४ वर्ष का बनवास और अन्त में महाभारत का श्रीगणेश होता है और भारत गारत हो जाता है। त्रेता में जब मारीच रूपी स्वर्ण मृग की खोज में श्री रामचन्द्र जी बन के भीतर घुस जाते हैं, उस समय सहसा राम के शब्द 'लक्ष्मण' 'लक्ष्मण' पुकारते हुए सुनाई देते हैं। उस समय सीता जी लक्ष्मण को भाई की रक्षा के लिये जाने को आदेश देती हैं। लक्ष्मण जी यह विचार करके कि राक्षस बड़े धूर्त्त और चालबाज होते हैं, सीता जी को समझाना चाहते हैं, अकेला छोड़ना अनुचित है। इस पर सीता कटु वचन बोल उठती हैं, "तुम्हारी भावना बुरी मालूम होती है, तुम भ्राता की मृत्यु स्वार्थ वश चाहते हो जिससे तुम्हारा आधिपत्य मेरे ऊपर हो सके।" इन कटु वचनों को सुन कर लक्ष्मण अधीर हो जाते हैं, और भ्राता की खोज में निकल जाते हैं। सीता को अकेला देख रावण उन का हरण कर लेता है और लंका युद्ध सीता जी की चेष्टा का परिणाम है।

हिंसा की भावना—अशान्ति का मूल कारण

पुत्र ! तुम याद रखो, विश्व में, किसी देश में, अथवा घर में अशान्ति जो हुआ करती है उसका कारण तो हिंसा की भावना होती है जिसकी अधिकांश जिम्मेवारी तीखी वाणी ही होती है। वाणी के बाणों से ऐसे घाव पैदा हो जाते हैं कि जिन की वेदना अस्त्र-शस्त्र के घावों से भी अधिक पीड़ा जनक होती है।

प्रेम छिपाये नहीं छिपता

बाघ बच्चे को उठा ले जाते हैं। सब से पहले वह बच्चे की आंखें देखते हैं। यदि वह निर्दोष बालक की आखें हैं तो बाघ बालक को अपनी बाघनी को दे देता है और बाघनी उस को पालन पोषण कर बड़ा कर देती हैं। किन्तु यदि किसी बड़े मनुष्य को ले जाते हैं तो उसकी आंखों में हिंसा के चिन्ह देखते ही बाघ उसकी आंखें निकाल लेता है और फाड़ कर खा जाता है।

बालावस्था में एक बार खेलते-खेलते अपने कंकर पत्थर की पूंजी एक बालक ने एक गढ़े में सुरक्षित रखने के लिये अपना हाथ उसमें डाल दिया। ज्यों ही उसकी पूंजी नीचे पहुंची एक भुजधर सर्प बालक की बाहुओं में लिपट

गया। बालक खेलता हुआ बाहर आया और हर्ष में आकर चिल्लाने लगा, "देखो, कैसा सुन्दर खिलौना लाया हूं।" बालक गण खेलने लगे किन्तु उसने किसी को न काटा।

इन बातों से स्पष्ट होता है कि प्रेम छिपाए नहीं छिपता। आंखों से टपकता है। योगियों की कुटियाओं के चारों ओर सिंह और सर्प पहरा देते रहते हैं।

प्यारे! वाणी की सावधानी की बड़ी जरूरत है। इसका संयम करने वाला सब इन्द्रियों पर वश कर लेता है। वाणी तो एक है, पेट का निर्भर भी इसी पर है और मन हृदय का भी इसी पर है। मनुष्य इस जिह्वा के स्वाद के लिये कितनी हिंसा करता है! वेज़बान पशुओं को काट-काट कर मांस भक्षण करता है, मदिरा पान करता है। अफ्युन, तम्बाकू, गाञ्जा, भंग का सेवन करता है। अपनी बुद्धि खो बैठता है। शरीर को सुखा देता है। मन दूषित और चित्त मलीन बना लेता है। आहार के जितने पाप हैं वह सब के सब इसी जिह्वा से ही होते हैं।

वाणी का दुरुपयोग और उससे हानि

व्यवहार में मनुष्य असत्य बोलता है, मिथ्या भाषण करता है। वाक्-छल और दम्भ से प्रयोग करता है। कटु, कठोर बोलकर दूसरे के हृदय का छेदन कर देता है। असभ्य अशुभ वाणी से, परनिन्दा और पृष्ठ वेषण से, वादविवाद वितण्डा से, ठट्ठा और विनोद से कितनी हानि पहुंचाता है। अपशब्द, कलह, उपद्रव, उपालम्भ, दूसरे को चिढ़ाना, भर्त्सना (झिड़कना) यह सब वाणी के ही व्यवहार हैं।

वाणी विचित्र विभूति

मानव मन के विचारों को प्रकट करने वाली वाणी ही है। वाणी क्या है? वास्तव में तो परमात्मा की दी हुई विचित्र विभूति है। समस्त विद्यायें, ज्ञान, उपदेश, शिक्षायें इसी वाणी के द्वारा प्राप्त की जाकर मनुष्य धुरन्धर विद्वान् बनता है। प्रभु की भक्ति इसी द्वारा करके मनुष्य बड़ा भक्तशिरोमणि कहलाता है। एक संगीत आचार्य जब गान करता है तो सहस्रों आदमियों को बेसुधबुध कर देता है, सब कुछ भूल जाते हैं। कीर्तन इसी वाणी के द्वारा होते हैं। योगी लोग जब सामगान करते हैं तो सिंह, व्याघ्र, मृग, सर्प सब प्रकार के आरण्यक पशु अपना हिंस्र स्वभाव भूल जाते हैं। उक्ति है "बातें हाथी पाइए बात हाथी पा", अर्थात् एक मनुष्य वाणी से ऐसा बोलता है कि हाथी जो लाखों रुपयों की कीमत का है, उसके ऊपर सवार कर दिया जाकर सन्मान पाता है और एक ऐसी वाणी बोलता है कि हाथी के पांव के नीचे उसे रौंदवा दिया जाता है। मनुष्य की व्यावहारिक साख, विश्वास इसी वाणी पर निर्भर हैं। करोड़ों रुपये का व्यवहार इसी एक वाणी के शब्द पर चलता है।

बिना वाणी अति हानि ।
बेज़बान इन्सान से पशु अच्छा ।

हरिद्वार में एक परिवार ऐसा हुआ, स्त्री और पुरुष दोनों के एक सन्तान पैदा हुई । पुत्र हुआ जिसकी जिह्वा ही नहीं । सब अन्य इन्द्रियों में सुडौल पैदा हुआ । अब कुछ खा ही नहीं सकता । माता का दूध पीता रहा । जब बड़ा हुआ, क्या खाये और कैसे खाये ? चीज तो जब मुख में डाली जाती है तो जिह्वा उसके लिए थाली अथवा बरतन ठहराने का बनती है और दांतों से चबाता है । जब जिह्वा ही नहीं, चीज कहां रखे, कैसे ठहरावे ? बिना जल और दूध आदि के स्थूल वस्तु कैसे खाए ?

माता-पिता के लिये बड़ी कठिनाई हुई । निर्धन थे, दूध लेने की शक्ति न थी । अब लस्सी मांग-मांग कर उसे पिलाते अथवा जल पिलाते । फिर दैव-वशात् दो पुत्रियां और पैदा हुईं तो उन दोनों की भी जिह्वा नहीं थी । तीनों बड़े होते गए । माता-पिता को बड़ी आपत्ति आ गई । तीनों के लिए लस्सी कहां से लावें ? अपना निर्वाह करें अथवा उनके लिए कहीं दूर से ग्राम से लस्सी लावें । नगरों में तो लोग गौवें रखते नहीं । ग्वाले रखते हैं । वह गौ पालते और दूध बेचते हैं । अन्ततः माता-पिता तंग आ गए । तीनों को निकाल दिया कि जाओ, अपनी भिक्षा मांगो और निर्वाह करो ।

अब तीनों लाचार होकर निकल पड़े । जिसके पास जाते, जबान तो है नहीं कि बोलकर बतलाते, रूप रंग से बलवान् स्वस्थ प्रतीत होते, हाथ फैलाते और आं आं भी न कर सकते । जैसे गूंगे की जिह्वा तो होती है जो कण्ठ को हिला सकती है । कण्ठ को अब कौन हिलावे ? स्थान-स्थान पर मुंह फाड़ कर लोगों को दिखाते कि हमारी जिह्वा नहीं है, हम बेज़बान हैं, हम पर दया करो । तब किसी भावुक ने उनके इस कष्ट का अनुभव किया और एक समाज की ओर से प्रमाण पत्र लिखकर दे दिया जिसमें उनकी बेज़बानी का वृत्तान्त दर्ज था । वह लोगों के सामने पेश कर देते और मुंह फाड़कर दिखाना न पड़ता । जिसे करुणा आती, पैसा दो चार उनके हाथ पर रख देता । अब वह बेचारे तीनों गाड़ी में सफर करते और यात्रियों से इकट्ठा मांगते । भय से एक दूसरे से पृथक् भी नहीं होते । प्रमाण पत्र भी एक था । इसलिये हर एक डिब्बे में इकट्ठे चढ़ जाते । ऐसी सम्पूर्ण आयु बेचारों ने बिताई । हमने रेल में कई बार देखा । अब उनका जीवन किस काम का ? पशु से भी निकृष्ट । पशु से काम तो फिर भी लिया जाता है । यह क्या काम करें । न पढ़ सकें न पढ़ा सकें । मनुष्य जीवन, न खा सकें न कमा सकें । न किसी की सेवा कर सकें । संसार में कोई एक भी पुण्य वह नहीं कमा सकते । जबान नहीं तो कान नहीं सुनते, कान नहीं सुनते तो ज्ञान कहां से प्राप्त हो ? मूक तो फिर भी ओ३म् नाम का उच्चारण

कर सकता है। संकेत भी बहुत कुछ समझ सकता है। परन्तु यह बेचारे न दीन के न दुनियां के।

पुत्र—पिता जी! फिर यह कौन ऐसा पाप होगा जो इन बेचारों को जबान तक न मिली?

पिता—ओ पुत्र! एक अल्पज्ञ और अल्पबुद्धि मनुष्य इस कर्म की गहन गति को कैसे यथार्थ वर्णन कर सकता है! तुम देखते हो, एक व्यक्ति सुन्दर, सुडौल शरीर, अच्छा पढ़ा लिखा। परन्तु बोलता नाक में है। लोगों को, सुनने वालों को कितना भद्दा भासता है। एक व्यक्ति धनी है, उसको बोलने में साहस ही नहीं, इतनी निर्बल ध्वनि से बोलता है जैसे उसमें प्राण ही नहीं। लोगों को सुनने में कितना कष्ट होता है। एक व्यक्ति बोलता है परन्तु ओष्टों में बोलता है। एक व्यक्ति बोलता है परन्तु ऐसे कटु और कठोर शब्द उससे निकलते हैं कि सब उससे घृणा करते हैं। वास्तव में वह जानबूझ कर ऐसा नहीं बोलता। स्वाभाविक शब्द किसी को प्रिय नहीं लगते। एक व्यक्ति बोलता है जो कि जिह्वा में हकलापन है, रुक-रुक कर बोलता है, लोग हंस पड़ते हैं।

एक व्यक्ति बोलता है तो हकला बनके बोलता है, लोग उस वाणी से प्यार नहीं करते। एक व्यक्ति चिचड़ा बोलता है, तो भी लोग उसे पसंद नहीं करते। एक व्यक्ति काक की भांति सारा दिन वाणी बन्द ही नहीं करता। जब लोग उसे देखते हैं तो किनारा कर जाते हैं कि ऐसे बकवादी की बात सुनने से लाभ ही क्या। एक इतना ऊंचा बोलता है कि वह धीमी स्वर से मर्यादा के अन्दर बोल ही नहीं सकता और एक मूक व्यक्ति है जो बोल नहीं सकता, और जिसकी जिह्वा नहीं, पक्षियों की तरह, उसका तो तुमने सुन ही लिया। वस्तुतः यह सब स्वभाव से ऐसा बोलते हैं। किसी को कटु वचन, अपशब्द नहीं बोलते कि उनका नया पाप बन जाये, परन्तु यह बोलना तो उन बेचारों का पूर्व कर्म का दण्ड भोग फल है। अब क्या पाप उनकी वाणी ने किया होगा, कैसे कहा जावे?

हां, नियम तो बताया जा सकता है। परन्तु वह सब युक्ति ही है, जैसे शास्त्रकारों ने कहा कि जो असत्य बोलते हैं वह पक्षी बनते हैं। अब बेजिह्वा मनुष्यों की तो जिह्वा पक्षियों की तरह नहीं, परन्तु यह पक्षी नहीं बन गये। पक्षी जिह्वा नहीं रखते, अपनी जाति में तो एक-दूसरे की बोली जान जाते हैं। मनुष्यों से, पशुओं से उनका कोई काम ही नहीं। जिनसे काम है उनको उनकी ध्वनि भिन्न-भिन्न अर्थों में मालूम हो ही जाती है। पक्षी तो परस्पर ऐसे ही बोलते देखे गये जैसे कवि एक-दूसरे से तुकबन्दी करते हैं। एक ने बोला, दूसरे सुनते रहे। फिर दूसरे ने उसका उत्तर दिया तो सब सुनते रहे। बारी-बारी से बोलते मैंने देखे हैं। काक, शुक, मैना, चिड़िया अनेक प्रकार से बोलते हैं। काक केवल कां-कां ही नहीं करते रहते, और वह एक-दूसरे की ध्वनि से खूब आनन्द लेते हैं। क्रोध से भी उनकी उच्चारण शैली को देखा सुना है जब दूसरे पक्षी से क्रोध करते हैं।

परन्तु बेज़बान हमारा बेचारा मेहमान, जिसका हमने ऊपर वर्णन किया है, यह तो कुछ भी नहीं बोल सकता, इसके तो पक्षी से भी अधिक दण्डनीय कर्म होंगे।

वाणी महत्त्व

वाणी के पुण्य करने वालों के भिन्न-भिन्न चिन्ह हैं। जैसे एक व्यक्ति बोलता है तो श्रोता के नेत्रों से अश्रु प्रवाह जारी हो जाता है। दूसरा बोलता है तो जनता सहसा हंसने लग जाती है। तीसरे का बोल ऐसा है कि रोमांच खड़े हो जाते हैं। एक व्यक्ति ऐसा बोलने वाला आया कि प्रथम शब्द से ही लोगों के कान खड़े हो गये। फिर घन्टा दो घन्टा बोलता रहा, किसी एक का भी ध्यान दूसरी ओर नहीं गया, सब के कर्ण और नेत्र उधर ही लगे रहे। एक व्यक्ति बोलता है तो निर्बल मनुष्य के अन्दर उत्साह उत्पन्न कर देता है, सब के रक्त ऐसे उबलने लगते हैं जैसे अग्नि पर जल खौलता है। एक व्यक्ति के बचन से श्रोता सहसा मूर्छित अवस्था में पड़ जाते हैं।

मधुर भाषी लोग ज्यों ही बोलते हैं कितना प्रिय लगता है! बार-बार सुनने को मन चाहता है। वाणी क्या जादूगरनी है कि अत्यन्त आपत्ति में पड़े को सब कुछ विस्तृत करा देती है। रोगी और निर्बल को वाणी ही अर्ध स्वस्थता प्रदान करती है। अन्धेरी काली रात में, बिछड़े हुये साथियों को, जंगल के भयानक मार्ग में एक-दूसरे का शब्द ही आश्रय बना करता है। **प्रभु की प्रेम भरी वाणी तो परम रसायन परम औषध का काम देती है।** कभी नौकर बन-कर पतितों को पार तरान कराती है। कितने पापी पतित व्यक्ति महात्माओं की वाणी से पवित्र हो गये, बड़े-बड़े शत्रुओं, डाकुओं के लिये वाणी बाण का काम कर गई। पापियों के पाप मिट गये और शत्रुओं की शत्रुता एक दम दूर हो गई। संशयात्मक बुद्धियों को वाणी ने अमोघ शस्त्र से निश्चयात्मक बना दिया। भ्रम भ्रांति में निमग्न मनुष्यों को निर्भ्रान्त कर दिया।

वाणी का बंधा और हाथ का बंधा

हाथ तो शरीर को बांधता है, वाणी दिलों को बांधती है। हाथ का बंधा तो विवश होता है, वह मन में सोचता ही रहता है कि कैसे मुक्त होऊं, निकल जाऊं, परन्तु वाणी का बंधा हुआ अपना सब कुछ भूल जाता है। वह उसी बन्धन में ही आनन्द मानता है, मुक्त होने की इच्छा भी नहीं करता।

वाणी जादूगरनी है

विश्वामित्र ऋषि जब-जब वशिष्ठ जी के पास जाते थे तो यह इच्छा लेकर जाते थे कि वह मुझे ब्रह्मर्षि कहें, परन्तु वह राजर्षि ही कह देते जिससे विश्वा-मित्र को अत्यन्त क्रोध चढ़ जाता। एक बार विश्वामित्र जी तैयारी करके शस्त्र

साथ बांधकर इस भाव से गये कि अब वशिष्ठ का सिर उतार दूंगा, वह मुझे ब्रह्मर्षि क्यों नहीं कहता ? वे शस्त्रबद्ध गये। विश्वामित्र भगवान् की कुटी के बाहर खड़े हो गये। वशिष्ठ जी अन्दर थे। उनको कोई ज्ञान न था। उस समय अकस्मात् वशिष्ठ जी अपनी धर्मपत्नी से कह रहे थे कि विश्वामित्र जी ऐसे अच्छे हैं, ऐसे गुणी हैं। उनकी बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। जब विश्वामित्र जी ने ऐसा सुना तो मन ही मन आश्चर्य करने लगे कि मैं तो वशिष्ठजी को ईर्ष्यालू समझता रहा, कि वह ईर्ष्या से मुझे राजर्षि कह देते हैं। मेरे सम्बन्ध में तो उनके मन में बड़ा मान है, वह मेरे बड़े हितैषी हैं। पृष्ठ पीछे उनको मेरा कोई भय नहीं है, न उनको पता है। और फिर एकांत में अपनी पत्नी से ही मेरा गुणगान कर रहे हैं। मुझ में अवश्य दोष है, वह मेरे हित के लिए कहते हैं। अब निरभिमान होकर उनके चरणों में गिर पड़ना चाहिये कि वह मुझे सन्मार्ग बतावें। शस्त्रों को फेंक दिया और बड़ी विनम्रता से अन्दर सिर झुकाकर उन के चरणों में पड़ गये। वशिष्ठ जी ने जब विश्वामित्र जी के अन्दर इतना नम्र भाव देखा तो झट कह दिया, "आइए ब्रह्मर्षि जी" और उठा कर गले लगा लिया। यह है वाणी का जादू।

हिसार में पण्डित लेखराम जी महाराज कड़ाके से कर्म मीमांसा पर बोल रहे थे और इतने में मुगल डाकू जिसकी सैकड़ों सहस्रों की डाकुओं की सेना थी और जो कभी पुलिस और सरकार के हाथ न आता था वह उधर आ गया। लोग बड़े दुःखी थे, पर कोई बोल नहीं सकता था। जब सरकार भी लाचार हो गई थी, पण्डित जी के एक ही उपदेश के कान में पड़ने से जार-जार रोने लग पड़ा और चरणों में गिर पड़ा। कहा, महाराज ! मेरी मुक्ति कैसे होगी ? उसी क्षण अपनी पाप वृत्ति को त्याग दिया और साधु बन गया। उसके साथियों ने भी उसको देखकर पाप वृत्ति को तुरन्त त्याग दिया। ऐसे तो अनेक उदाहरण हैं। वाणी क्या जादूगरनी है !

वाणी का उच्चारण स्वर भाव अनुसार

मनुष्य की वाणी मन के भावों के अनुकूल ही अपना उच्चारण स्वर बना लेती है। अपने आप वाणी काम के समय और प्रकार बोलती है, क्रोध के समय अन्य प्रकार, लोभ और मोह के समय अन्य प्रकार। अहंकार से वाणी अन्य प्रकार बोलती है। खुशामद, स्वार्थ और भय से और प्रकार बोलती है। स्त्री से, पुत्र से, अधिकारी से, भिक्षुक से, सुतराम सबके साथ भिन्न-भिन्न प्रकार के वचन शब्द निकालती है।

भाव विचार मनुष्य के अन्दर अनेक हैं, इसलिए वाणी भी अनेक प्रकार से बोलती और व्यवहार बर्ताव करती है। फिर तुम समझो कि किसी के फल को क्यों, किस बदले में, कैसे मनुष्य कह सकता था ? उदाहरण रूप में समझो, भय से खुशामद करने वाला मनुष्य चाहे, वह कितना ही सज्जन क्यों न हो, वह

अपने स्वामियों, रक्षकों, संरक्षकों के संसर्ग से दूषित भाषण शैली से ऐसा प्रभावित होगा कि वह अपनी वाणी से भाषण करते समय अपशब्द अवश्य बोल जायेगा।

लोभ से खुशामद करने वाला मनुष्य अपनी वाणी में छल लायेगा। मोह से खुशामद करने वाला मनुष्य अपनी वाणी में दम्भ करेगा।

पर-स्त्री को देख मन मैला हो जाने पर लोगों में उसे बहिन जी बहिन जी के शब्दों से पुकार विश्वास घात करेगा।

एक व्यक्ति वे हैं कि सदा उनकी बुद्धि मिथ्या ही घड़ती रहती है। और ऐसे सफेद झूठ बोलते हैं जिनका सिर पैर नहीं होता। निरर्थक बोलने वाले भी बहुत हैं।

धन के बल पर मनुष्य की वाणी और प्रकार बोलती है, विद्या के बल पर और प्रकार, अधिकार के बल पर और प्रकार बोलती है। सामान्य रूप से तो वाणी प्राण के बल पर बोलती है, परन्तु विशेष-विशेष समय में वाणी किसी और बल के आश्रय और प्रकार से बोलती है।

वाणी का संयम आवश्यक

निन्दा सुनने और निन्दा करने वाले को जब निन्दा में प्रसन्नता होती है तो समझना चाहिये कि उसकी आंख, जुबान, मन, कान, बुद्धि पर ऐसा प्रभाव पड़ रहा है कि भावी जन्म में इन पांचों में न्यूनाधिक सम्बन्ध होगा। जिनके अब इन इन्द्रियों में विकार है, पूर्व जन्म में वे इस दोष के दोषी अवश्य रहे होंगे। इसलिए वाणी संयम पर सब शास्त्रकारों ने बड़ा बल दिया है। क्यों ? मनुष्य जो कुछ अपने शरीर के भीतर, पेट में अथवा हृदय मन बुद्धि में अथवा आत्मा में ग्रहण करता है वह सब ज्ञान इन्द्रियों की सहायता से करता है। जिस प्रकार जिस भाव से वह जिस इन्द्रिय से जो ग्रहण करता है, वैसा ही वाणी से उसका आविष्कार करता है। जैसे, पुत्र को देखा तो बोलने पर पुत्र के अनुकूल शब्द वाणी से निकलते हैं। स्त्री को देखा, माता को देखा तो वैसे शब्द निकलने लगे। जब किसी पर चोर आंख से देखता है तो फिर वाणी ही छल कपट से बोलती है। कान से जब बुरे विचार, बुरे शब्द सुनता है तो वाणी भी झट कटु कठोर अपशब्द बोलने लग जाती है। नासिका से सुगन्धि दुर्गन्धि सूंघता है तो वैसे शब्द मुख से निकलने लग जाते हैं। सुतराम हर इन्द्रिय से ग्रहण किया हुआ उसका विषय वाणी से उसी रूप से प्रगट होने लगता है। सब अंग-अंग, नाड़ी-नाड़ी पर उसका प्रभाव पड़ता है। इसका प्रभाव आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक पड़ता है, इसलिए इस यन्त्र को सुव्यस्थित रखने के लिए, जिस से संसार और परमार्थ दोनों का सम्बन्ध है, **संयम करने की बड़ी आवश्यकता है।** और अधिक के अतिरिक्त प्रथम ही आवश्यकता है क्योंकि यह सब का यन्त्र है। आंख का, नाक का, कान का, त्वचा का, मन का, बुद्धि का यन्त्र है।

ओ३म्

तेरहवां सर्ग
बुद्धि का महत्व

प्रभु देव ने मनुष्य को बुद्धि देकर क्या अद्भुत शक्ति वाला बना दिया है ! बुद्धि एक अमूल्य रत्न है, बिना मनुष्य के किसी भी और प्राणी को प्राप्त नहीं । अपने भोग के लिये तो पशु, पक्षी, कीट, पतंगों को भी प्रभु ने प्रदान की है, परन्तु वह नैसर्गिक स्वाभाविक है जो जन्म से उनको प्राप्त है । एक जाति में उतनी ही सब जीवों में हैं, चाहे वह बड़ा है चाहे छोटा । इस लिये उनकी पारस्परिक कोई कीमत नहीं । वह उसका न विकास कर सकते हैं न ह्रास ।

बुद्धि का विकास

मनुष्य ने बुद्धि को विकास देकर बड़े अद्भुत आश्चर्यजनक कार्य कर दिखलाये हैं । पर्वतों को बारूद से निशान बना-बना कर समतल और राज मार्ग बना दिये । नदियों को काट कर नहरें निकाल सैंकड़ों वर्ष के मरुस्थलों को हरा भरा कर दिया । लाखों करोड़ों मन की उपज में वृद्धि कर दी । बड़े सुन्दर उद्यान बनाकर नाना प्रकार के फलों से लोगों को निहाल कर दिया । रेल तथा विद्युत् तार निकाल कर मासों की यात्रा को घण्टों की यात्रा बना दिया । एक क्षण में एक स्थान के समाचारों को सहस्रों मीलों तक पहुंचा दिया । वायु जल विद्युत् पर अधिकार जमा करोड़ों रुपयों का कोष निकाल लिया । सुतराम आज संसार में जो भी चमत्कार दिखाई देता है, वह सब एक बुद्धि का आशीर्वाद है ।

चार प्रकार के काम

जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये और इस लोक और शासन, शिक्षा और व्यापार, इन चारों का निर्भर बुद्धि पर है । बिना बुद्धि के कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता ।

शासन का निर्भर बुद्धि पर है । वैद्य बुद्धिमान् न हो तो प्रजा पर आपत्ति आ जाए ।

वैद्यक का निर्भर बुद्धि पर है । वैद्य बुद्धिमान् न हो तो रोगी तुरन्त मृत्यु का ग्रास बन जाए ।

व्यापार तो बुद्धि का ही खेल और प्रसार है । यह बड़े-बड़े शिल्पालय, कला-कौशल सब इस के खेल हैं । एक निर्धन दिनों में करोड़पति बन जाता है । क्या विचित्र शक्ति है !

निर्बुद्धि मनुष्य सदा आधीन, दुःखी और भोजन के लिए पराधीन फिरता है।

विद्या तो ग्रहण ही बुद्धि से की जाती है। बुद्धि न हो तो शब्द अक्षर को समझे कैसे ? वरना वह तो ढोर गंवार ही रह जाये। जितनी न्यूनताएं और आवश्यकतायें और कामनायें हैं वे सब बुद्धि के होने से ही पूरी हो सकती हैं। बिना बुद्धि मनुष्य ठनठन गोपाल ही रहता है।

बुद्धि के न होने से पशु को दूसरे दुःखी पशु का दुःख दर्द अनुभव नहीं होता, उसमें सहानुभूति ही नहीं। दूसरे से सहानुभूति बुद्धि की उपज है, वरना माता बालक से प्रेम ही न करती। एक उन्मत्त को देख लो, वह कभी बालक से प्रेम कर ही नहीं सकता। वह जानता ही नहीं कि प्यार और प्रेम क्या वस्तु है। किसी वस्तु का जानना तो बुद्धि का ही काम है। इस बुद्धि से ही एक्स-रे बना, कि शरीर के भीतर के गुप्त दोष रोगों को शीशा लगाकर जान लिया जाए। अण्डे में अथवा गर्भिणी के गर्भ में क्या है, नर है या मादा, यन्त्र लगाकर जान लिया जाता है।

अमरीका में एक ऐसा यन्त्र बना हैं जो मनुष्य के हृदय के साथ लगा देने से बता देता है कि वह झूठा है अथवा सच्चा है।

पृथ्वी के अन्दर तहों के नीचे छिपे हुवे रत्नों को, स्वर्ण, रजत, अभ्रक, हीरा, ताम्र, लोह, कोयला को जान लेने वाली विद्या बुद्धि का ही चमत्कार है।

संसार की अपरोक्ष और परोक्ष सब वस्तुओं का ज्ञान इस बुद्धि से ही हो सकता है। आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, धर्म, शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, चित्त क्या वस्तुएं हैं, जगत् का सम्बन्ध किस-किस से कैसा-कैसा है, यह कोई भी पशु पक्षी जान सकने के योग्य नहीं। एक मनुष्य बुद्धि ही है जो जान सकती है। जितनी बुद्धि जिसके पास है उतना ही उसका मूल्य है। इसके सदुपयोग से मनुष्य महान् से महान् पुरुष बन जाता है और इस के दुरुपयोग से नीच से नीच गति को प्राप्त करता है। संसार में मूर्खों, निर्बुद्धियों का नाम गणना में नहीं आया और न कभी उनकी पूजा और सत्कार हुआ। बुद्धिमानों का यश, नाम, मान और सत्कार सर्वत्र होता है। मूर्ख के पीछे कौन चले ? परन्तु बुद्धिमान् अपने पीछे लाखों और करोड़ों मनुष्यों को चलाता है, न केवल अपने जीवन काल में, न केवल अपने घर की चारदीवारी में अथवा नगर के मनुष्यों में अपितु अपनी मृत्यु के पश्चात् भी शताब्दियों के बीत जाने पर वह जीवित प्रतीत होता है और देश-देशान्तर में उसके नामलेवा सहस्रों लाखों होते हैं। वह देश, काल और जाति की सीमा से ऊंचा उठ जाता है। मनुष्य ऐसे ही वन्दनीय बन जाता है, जैसे परमेश्वर वन्दनीय है। अपितु अन्ध श्रद्धालु लोग तो परमेश्वर से भी अधिक उस मनुष्य की पूजा करना अधिक पसन्द करते हैं।

पशु और मनुष्य में बुद्धि सम्बन्धी अन्य भेद

पशु माता, भगिनी की पहचान नहीं कर सकता, परन्तु मनुष्य में यह गुण

है कि वह माता को माता, भगिनी को भगिनी, पुत्री को पुत्री, स्त्री को स्त्री समझता है और यथायोग्य सत्कार और बर्ताव करता है। यह गुण बुद्धि के ही कारण है। पशु चार आने की रज्जु बंधा हुआ, कितना ही बलवान् क्यों न हो, अपने को विमुक्त नहीं कर सकता, बुद्धि न होने से। परन्तु मनुष्य पिञ्जरों और दुर्गों में कैद हुआ-हुआ, जंजीरों से बंधा हुआ, आन की आन में निकल जाता है, अपनी बुद्धि के बल पर।

वाह बुद्धि !

मुलतान में एक कृपण सेठ का बच्चा खेलते-खेलते एक छल्ले को अपनी उपस्थ इन्द्रिय की सिपारी में चढ़ा बैठा। अब उससे उतर न सका और रक्त जमा होता गया। बच्चा चिल्लाया। इन्द्रिय सूजती गई। शोर मचा दिया। गृहवासी बड़े परेशान, शशद्र हो गए। एक डाक्टर को बुलवाया। डाक्टर ने कहा, १२५) रु० लूंगा, अभी स्वस्थ कर दूंगा। धनी था कृपण, परन्तु इकला बच्चा था, प्राण जाते थे। उसका चिल्लाना और रोना कराहना सुनने और देखने वाले से भी सहन न किया जाता था। सब ने कहा, सेठ ! तुरन्त दो। उसने रुपया निकाल दिया। डाक्टर ने कहा, एक अधेले की बरफ ले आओ। बरफ आई और ऊपर रख दी। मिनटों में सूजन उतर गई, चाम संकुचित हो गया, छल्ला स्वयं ही उतर गया। सबके प्राण में प्राण आ गए।

पुत्र ! समझो, यह किसका मूल्य है ? आराम तो अधेले की बरफ से हुआ। प्राण भी उसी से बचे, परन्तु बुद्धि न होती तो अधेले की बरफ क्या करती ? अब स्वच्छता प्रदान करने वाली, एक अधेला कीमत की बुद्धि का मूल्य १२५)। वाह बुद्धि !

वकील और बैरिस्टर लाखों रुपये शुल्क ले लेते हैं। फांसी के तख्ते से एक ही बात में छुड़ा देते हैं।

दृष्टान्त सं० १—एक सुयोग्य वकील था। एक बड़े धनाढ्य भूमिपति के पुत्र ने अभिमान से आवेश में आकर किसी का प्राणघात कर दिया। पकड़ा गया। कारावास में डाला गया। अभियोग चला। उन दिनों पैसा बहुत मंहगा था। एक वकील के पास गए। उसने कहा, १०००) रुपया लूंगा। भूमिपति ने स्वीकार किया। पेशी के दिन वकील ने अभियुक्त को सिखाया कि जब न्यायाधीश तुम से पूछे, तुम्हारा नाम क्या है, तो कहना बां ! सुतराम जो भी प्रश्न न्यायाधीश करे अथवा उसका वकील करे, कोई भी करे, तुम बां के सिवाय कोई शब्द न बोलना। फिर मैं समझ लूंगा।

चुनाचे पेशी के समय ऐसे ही अभियुक्त ने बां बां की। वकील ने कहा, मेरा मुवक्किल अभियुक्त पागल है, इसने प्राण घात किया भी हो तो उन्मत्त अवस्था में होने से, इच्छा से अथवा ज्ञान से नहीं। डाक्टरों ने निरीक्षण किया।

पागलपन का चिह्न तो वां है ही, और कहां पाते ? अन्ततः वह अभियुक्त विमुक्त हो गया।

दृष्टान्त सं० २—पुराणों में एक कथा आती है कि एक दैत्य तप करने लगा। शिव जी की आराधना करने लगा। शिव जी उसके तप से प्रसन्न हो गए और दर्शन देकर कहा, मांगो, क्या वर मांगना है ? दैत्य ने कहा, जिस पर मेरा हाथ पड़े वह भस्म हो जाए। मैं हाथ में ऐसा वर चाहता हूं। शिव जी भोले ने यह वर दे दिया। अब उसका नाम भस्मासुर दैत्य हो गया। वह अब जिस पर हाथ फेरे वह भस्म हो जाय। नगर में बरबादी मचने लगी। सब शिव जी के पास दौड़े और कहा, "महाराज ! आपने वर देकर संसार का नाश कर डाला। अब आपकी भी बारी आयेगी। दैत्य तो स्वभाव से दैत्य है, आपको कैसे रखेगा ?" चुनाचे दैत्य ने पार्वती को देखा, मोहित हो गया। परीक्षण वह कर चुका था। अब वह शिव जी को भस्म करने के लिये आया तो शिव जी जान गए। वह भयभीत होकर दौड़े, दैत्य भी उनके पीछे दौड़ा। पार्वती ने बाहर निकल कर देखा और दैत्य से कहा, "अरे, क्यों दौड़ता है ? जो तेरी कामना है वह मैं पूरी करती हूं, तुम शिव जी के पीछे मत दौड़ो।" दैत्य ने कहा, "मैं तुम पर मोहित हो गया हूं।" तो पार्वती ने कहा, "यह साधारण-सी बात है, तुम मुझको प्रसन्न करो जैसे शिव जी मुझे प्रसन्न करते हैं। मैं तुम्हारी हूं।" दैत्य ने कहा, "जैसे कहो वैसे प्रसन्न करूंगा।" पार्वती ने कहा कि शिव जी एक हाथ सिर पर और एक हाथ कमर में रखकर मुझको नृत्य दिखाया करते हैं। बस, इसी में मेरी प्रसन्नता है। झट दैत्य ने एक हाथ अपने सिर पर दूसरा कमर में रखा, तो उसी क्षण स्वयं भस्म हो गया। अब बोलो, यह चमत्कार किसका था ? बुद्धि का ही तो था। कितना बचाव संसार के लोगों का और पार्वती के धर्म व आचार का हो गया। इसलिये हमारे वेद शास्त्रों ने आर्य जाति में उत्पन्न हुये नवजात के लिये जो संस्कार रखे उनमें प्रथम ही दिवस बुद्धि के लिये प्रार्थना की गई है, वाणी के लिए की गई है, सात बार मधु चटाया जाता है। नवजात बालक के लिये बुद्धि और वाणी की प्रार्थना की जाती है और हाथ से श्रेष्ठ धन कमाने के लिये प्रार्थना की जाती है।

बस, इतना संभल के रहना चाहिए कि बुद्धि जैसे अमूल्य रत्न का निरादर न हो जाए। जो इसका निरादर करता है वह उसका निरादर करती है।

एक धनी मानी का धन सम्पत्ति पर बड़ा अधिकार है, सैंकड़ों भृत्य सेवक संकेत पर नाचते है, धरती कांपती है, जब जरा भी इसकी बुद्धि में विकार पड़ा, पागलपन आया, उसकी कौड़ी भी कीमत नहीं रहती। ऐसे अनेकों दृष्टान्त हैं, पर तुम एक ही सुन लो।

बुद्धि विकार का दृष्टान्त

रुझान जिला डेरागाजीखान (पाकिस्तान) में एक नगर है। वहां एक

व्यक्ति चौधरी तीर्थराम नाम का था। वाणी से मधुर, शरीर में दक्ष, पुरुषार्थी, सामाजिक, बड़े मान प्रतिष्ठा वाला तथा प्रभावशाली था। बुद्धि उसकी बड़ी तीव्र थी। दूसरे को देखकर ऐसा जांच लेता और अपनी बुद्धि के बल पर, वाणी से ऐसा बोलता कि उसे मोहित कर लेता। उसकी वाणी और बुद्धि में ऐसा आकर्षण था कि दूसरा उसके संसर्ग में आते ही भोलाभाला बन जाता था। ऐसा विश्वास पैदा हो जाता कि अपनी वाणी के प्रेम में उसे मुग्ध कर देता और अपनी बुद्धि को तीक्ष्ण यन्त्र की तरह प्रयोग करता कि सब कुछ लूट लेता। डाका मार कर नहीं, बुद्धि से विश्वास दिला कर। भोले-भाले मुसलमान पहाड़ी लोगों को सौदा बेचने और खरीदने में बहुत लूटता था और वह लोग बड़े प्रसन्न होकर उसके साथ ही व्यवहार करते। वह ऐसे धनवान् बनता गया।

धन का काम ही ऐसा है कि वह मनुष्य को मद्य पान करा देता है। मस्तिष्क में मद चढ़ा देता है। यह एक नियम है कि अज्ञान से जो धन और अधिकार प्राप्त किया जाता है, तो धन में तो आसक्ति हो जाती है और अधिकार प्राप्त करने पर अभिमान हो जाता है और फिर वह दोनों उसका सर्वस्व नाश करने वाले बन जाते हैं। चुनांचे तीर्थराम बड़े मद में आ गया।

एक दिन डेरागाजीखान दुकान की विक्रयार्थ सामग्री लेने के लिये तैयार हुआ। उस समय अपने घर में ५००) रुपये नकद रखा था और ११००) रुपया दूसरे किसी दुकानदार धनी से दस्ती ले लिया कि वापस आकर दे दूंगा। व्यापारी लोगों का लेन-देन ऐसे हर स्थान पर चलता है। कभी व्यापारी की तिजोड़ी में सहस्रों इकट्ठे हो जाते हैं और कभी पैसा भी नहीं होता। परन्तु इससे वह निर्धन अथवा ऋणी नहीं समझे जाते। व्यवहार में ऐसा होता ही है। वाणी की पत साख पर सब का व्यवहार विश्वास से चलता है। रात्रि को १६००) रुपया दुकान के अन्दर रखकर घर जा सोया। कभी कोई भय अथवा शंका हुई ही न थी। यह विचार करके कि घर पर कौन ले जाता फिरे, दुकान से ही तो प्रातः और कागज पत्र उठाने हैं, यहां से ही चढ़ना है, वह दुकान पर रख गया।

न जाने कोई डाकू इस सम्पत्ति को देख रहा था, ताड़ रहा था। रात्रि हो गई, सब अपने-अपने घरों में सो गए। वह डाकू समय अनुकूल पा, सेंध लगा रात-रात में १६००) रुपया उड़ा ले गया। तीर्थराम प्रातः को तैयार होकर दुकान पर आया। ताला खोला। अन्दर तो एक पाई न थी, उलटा सेंध लगी हुई पाई। उसकी बुद्धि पर अकस्मात् बड़ा आघात हुआ। जिस बुद्धि के बल पर सब को बना लूट लिया करता था, सब की चेतना भुला देता था, अब अपनी चेतना का ऐसा ह्रास हुआ कि पागल हो गया। घर गया तो सब को पीटने लग पड़ा। घर वालों ने उस के हाथ वस्त्र से बांध दिये कि बट्टा न मार सके और हाथों को भी आघात न पहुंचे। उसने वह वस्त्र अपने दांतों से रात को फाड़ कर हाथ छुड़ा लिये और जाकर अपनी भगिनी के घर बट्टे मारने लगा।

फिर उन्होंने (अर्थात् स्त्री और पुत्र ने) उसे एक स्तम्भ के साथ बांध दिया। रात्रि को वह खम्भा के नीचे से मट्टी कुरेदने लगा कि छत गिर पड़े। घर वालों ने देखा तो उसे घर से निकाल दिया। किवाड़ बन्द कर दिये।

क्रोध वश उसने अपने सारे वस्त्र फाड़ दिए। नङ्ग धड़ङ्ग गली कूचों में बट्टे मारने लगा। लोग देखकर अन्दर भाग जाते, किवाड़ बन्द कर देते, ताले लगा लेते। अन्ततः वह नगर के बाहर पुल के नीचे जा पहुंचा। नङ्ग धड़ङ्ग, शीत ऋतु, वस्त्र आच्छादन को नहीं, तृषा शान्त करने को जल नहीं और खाने को रोटी नहीं, गलियों में जाता है तो लोग भय से फाटक बन्द कर देते हैं। अन्न-जल कहां मिले ? आखिर बेचारा पुल के नीचे भूखा प्यासा तड़पता समय गुजारने लगा। तृषा ने व्याकुल किया तो अपना मूत्र हाथ की अञ्जली से पीने लगा। क्षुधा पीड़ित हुआ, जब शौच आया उसे भी हाथों से उठा कर खाने लगा। यह दशा तीर्थराम की हो गई। अन्ततः वह बेचारा कब तक जीवित रह सकता था, इसी दशा में चुढ़-चुढ़ कर मर गया।

पुत्र ! कभी प्रभु की इस अमूल्य रत्न देन बुद्धि का निरादर दुरुपयोग न करना चाहिए। नन्हे बालक मल मूत्र में लतपत बैठे रहते हैं। पशु भी मल मूत्र में जीवन बिताते हैं। कारण, बुद्धि न होने से। परन्तु जब मानव शिशु कुछ भी बुद्धि में आता है तो स्वल्प पंक मिट्टी वस्त्र पर लगने से उसी क्षण शुद्ध करता है अथवा फेंक देता है। यह उत्तम-उत्तम सूक्ष्म वस्त्राच्छादन, विशाल भवनों का निवास, इतर, गुलाब, फुलेल की सुगन्ध लेना, उत्तम से उत्तम मेवे, फल, मिष्टान्न खाना, सजधज से रहना, मोटर गाड़ी का आरोहण, कुर्सी, मेज, डेस्क सजाना लगाना, यह सब किस को भाते हैं ? बुद्धि ही को तो भाते हैं। बुद्धिहीन उन्मत्त तीर्थराम को देख लिया कि अब मल मूत्र खाता पीता है। बुद्धि न रही तो भाना न भाना अच्छी और बुरी की पहचान कैसे रहे ? स्त्री, पुत्र, भगिनी और मित्र प्रिय लगते है, मान करते हैं। कब तक ? जब तक बुद्धि है। मैं तो कहूंगा कि इतना तिरस्कार उस निष्प्राण, निर्जीव शव का भी नहीं किया जाता जो बिना जलाये जाने के और किसी काम नहीं आता। उसे भी आदर से स्नान कराया, उठाया, ले जाया जाता है। परन्तु आज तीर्थराम जैसे जीवित प्राणी को कोई सामने नहीं आने देता।

बुद्धि के दुरुपयोग का फल

देखो प्यारे ! आज सारा संसार दुःखित, पीड़ित है तो बुद्धि के दुरुपयोग के कारण। नगरों में न सिंह का भय है न व्याघ्र, अजगर, सर्प हिन्सक जन्तुओं का। परन्तु मनुष्य घर में बैठा हुआ, सोता हुआ भी स्वप्न में डर रहा है। मनुष्य मनुष्य से भयभीत हो रहा है। अमेरिका, रूस, इग्लेंड जैसे समृद्धिशाली राज्य शान्ति से निद्रा नहीं ले सकते। एक को दूसरे के आक्रमण का भय लग रहा है।

बुद्धि ने ऐसे-ऐसे आविष्कार किये परन्तु अब वही भयभीत करा रहे हैं। अशान्ति और शान्ति का कारण प्रसिद्ध और प्रगट रूप में तो वाणी है।

बुद्धि प्रेरक है

परन्तु वाणी तो बुद्धि के निश्चय और विचार को ही प्रकट करती है। कारण तो बुद्धि ही है। शास्त्रकार कहते हैं—"विनाशकाले विपरीतबुद्धिः"। विनाश का समय जब किसी का आता है तो बुद्धि ही उलट हो जाती है। जब तक बुद्धि स्वस्थ है, निर्विकार है, शान्ति ही शान्ति है।

साक्षात् आत्मिक बुद्धि तो है, निश्चयात्मक नहीं

हम सब लोग आपनी आंखों के सामने अपने घर के और पराये प्राणियों को मरता हुआ देखते हैं। हम जानते हैं कि हमने भी जरूर मरना है और पता नहीं किस क्षण यह श्वास बन्द हो जाये। तब भी, अनेकों मृतकों को देखते हुए भी, हमें मृत्यु का साक्षात् नहीं। हमारी बुद्धि में साक्षात् का विश्वास तो है परन्तु निश्चयात्मक नहीं बैठा। वरना जिसे मृत्यु स्मरण हो उससे पाप कैसे हो? वह अपने इस अल्प जीवन काल को सिनेमा और भोग विलास और संसार की लच्चर बातों और बुराइयों में क्यों जाने दे ? वह तो सावधान रहे।

महात्मा बुद्ध ने एक बूढ़े, रोगी और मृतक को देखा, तो बस भयभीत हो गये कि इतना स्वल्प मनुष्य जीवन पाकर व्यर्थ गंवा दूं ? जब मर जाना है, क्यों न इस बुद्धि और अनमोल शरीर का लाभ उठा लूं ? राजपाट, पुत्र, स्त्री, माता, पिता, सब मान धन त्याग दिया और तप करने लगे। समझ आ गई तो बस आत्म-दर्शन भी पा लिया। यह बुद्धि तो विलक्षण जादू है। महात्मा बुद्ध के दर्शन मात्र से अंगुलीमाल डाकू, जो राजा की सेना के घेरे में भी न आ सकता था, महात्मा की दिव्य दृष्टि पड़ते ही चरणों में गिर पड़ा और पश्चात्ताप करने लगा, ज़ार-ज़ार रोया। एक ही क्षण में जीवन बदल गया और भिक्षु संन्यासी हो गया। जो बुद्धि परमार्थ को समझ जाती है तो फिर वह इतनी ज्योतिर्मय हो जाती है कि एक-एक बाह्य इन्द्रिय से उसका प्रकाश होने लगता है। वाणी बोलती है तो अनुपम, आंख देखती है तो विलक्षण, हाथ स्पर्श करते हैं तो अद्‌भुत प्रभाव पैदा कर देते हैं।

अपवित्र बुद्धि क्यों ?

पुत्र—पिता जी ! बुद्धि किस कारण से अपवित्र हो जाती है ? बालकपन में तो सब बच्चे सरलस्वभाव और पवित्र बुद्धि वाले होते हैं।

पिता—पुत्र ! बालकपन में तो बुद्धि और मन का विकास नहीं होता। पूर्व संस्कारों और नवीन वातावरण, माता-पिता, सम्बन्धी का प्रभाव भी पड़ता है और स्थान, जाति तथा धर्म का भी संस्कार प्रभाव डालता है। ज्यों-ज्यों

बच्चा बढ़ता जाता है, किसी में लोभ, किसी में मोह, किसी में काम के संस्कार प्रबल होने से अनुकूल स्थिति मिल जाने पर वह विकसित हो जाते हैं और बुद्धि ज्यों बढ़ी उसका सत्व राज्य हो गया।

अपवित्र बुद्धि तीन प्रकार की होती है

१. आसुरी बुद्धि—नाना प्रकार के भोग विलास विषय की लालसा करने वाली।

२. राक्षसी बुद्धि—हिंसा आदि करने के निमित्त द्वेष युक्त तामसी बुद्धि।

३. मोहनी बुद्धि—मोह करके बुद्धि को भ्रष्ट करने वाली।

सात्विक बुद्धि

और जो सात्विक बुद्धि होती है वह सात प्रकार की होती है। इसमें भी बड़ा अन्तर रहता है। यह अपने पूर्व पुण्य कर्मों से मिलती है। स्थूल रूप से उदाहरण के साथ-साथ समझते जाओ।

(१) जुगनु बुद्धि—अर्थात् थोड़ी सी चमक अपने आप बुद्धि में आई और तुरन्त बुझ गई। यह लोग दूसरे का भला नहीं कर सकते, अपना भी बहुत थोड़ा कर सकते हैं। बुद्धि में प्रभु कृपा से उपजे शुद्ध संस्कार को, विचार को स्थिर नहीं रख सकते। यदि तुरन्त क्रिया में अथवा काम करते समय ऐसी रोशनी मिल गई तो कार्य में परिणत हो गई। यदि कार्य से पूर्व व पश्चात् उपजी तो फिर विचार ही भूल गया।

(२) दीपक बुद्धि—अर्थात् बुद्धि जगी, श्रेष्ठ संस्कार विचार उपजे, परन्तु अल्प मात्रा में प्रकाश करने वाली। वह अपने को सन्तोष देते रहे। जब अधिक भार पड़ गया तो वहां ही शांत हो गई, अथवा अहंकार हो गया तो जैसे फुल्ला आ जाता है तो प्रकाश मध्यम पड़ जाता है अथवा कोई भय आ गया तो आगे सोच न सके, वहां समाप्त हो गई। जैसे दीपक तेल का मोहताज है, और वायु के झोंके का भय रखता है, उसी प्रकार ऐसी बुद्धि वाले को स्वतन्त्रता नहीं और भय से रहित भी नहीं।

(३) लैम्प बुद्धि—लैम्प का प्रकाश तो अधिक विस्तृत क्षेत्र में पड़ता है, परन्तु आंधी वर्षा का भय और तेल बत्ती का मोहताज भी रहता है। ऐसे कुछ विद्या प्राप्त करके पूर्व अच्छे संस्कार वाली बुद्धि को अधिक चमका देती है, जो दूसरों को लाभ पहुंचाती है परन्तु मोहताजी उनको आजीविका की होती है। आजीविका के लिये ही वह बुद्धि का प्रयोग करते हैं। जो आजीविका के लिये विद्या अथवा बुद्धि को आधीन रखें उनको भय भी रहता है कि स्वामी अथवा राजा रुष्ट न हो जायें, अथवा जिन से काम पड़ा है वह रुष्ट न हो जायें। आजकल के अध्यापकों, पुरोहितों, उपदेशकों की, जो वेतन लेते हैं, यही लैम्प बुद्धि होती है।

(४) **टार्च बुद्धि**—भय तो नहीं, परन्तु मसाले की मोहताज रहती है। ऐसी बुद्धि वाले त्यागी होते हैं, परन्तु वह जहां तहां अपने प्रकाश से बोलते हैं वहां प्रोपैगण्डा (प्रचार) की मोहताजी (पराधीनता) उनको रहती है, अपने अनुयाईयों की आधीनता भी है।

(५) **गैस लैम्प बुद्धि**—पुष्कल प्रकाश देने वाली, रात्रि को दिन बना देने वाली, परन्तु सीमित होती है। ऐसे विद्वान् बुद्धिमान् नेता जो अपने पीछे लोगों को अन्ध विश्वास से लगा सकते हैं परन्तु वह किसी विशेष जाति अथवा विशेष स्थान प्रदेश में ही प्रसिद्ध होते हैं।

(६) **चन्द्र बुद्धि**—अन्धकार में प्रकाश को करने वाली। मोहताज और भय से रहित है। ऐसी बुद्धि वाले एक शक्ति रखने वाले होते हैं, ब्राह्म अथवा क्षात्र। यदि ब्राह्म बुद्धि हुई तो क्षात्र-ज्ञान न होने से अधूरी रही और यदि क्षात्र बुद्धि हुई और ब्राह्म शक्ति न हुई तो भी अधूरी रही। तुम देखते हो, कहीं तो ब्राह्मण विद्वान् होते हैं परन्तु रक्षा की शक्ति उनमें नहीं होती। कहीं रक्षा करने की तो बड़ी बुद्धि है, परन्तु चलाने की नहीं, फैलाने की नहीं।

(७) **सूर्य बुद्धि**—जो निरन्तर पूर्ण स्वतन्त्र प्रकाश देने वाली है। इसमें ब्राह्म और क्षात्र तेज शक्ति दोनों प्रकार की होती है। ऐसी बुद्धि वाले बहुत बिरले होते हैं।

ओ३म्

उपसंहार

सफल जीवन—वेदाभ्यासी, ईश्वरपरायण, सेवाधर्मावलम्बी

वस प्यारे पुत्र ! अब मैं इसे संक्षेप से पूर्ण करता हूं । तुम्हारा जीवन यज्ञ तब सफल है जब वेद, ईश्वर और धर्म में प्रीति, रुचि उत्पन्न करा दे । वेदाभ्यास के लिये वाणी, ईश्वर-परायण होने के लिये बुद्धि, धर्म के लिये हाथों को काम में लाओ । तब बृहस्पति, इन्द्र और सरस्वती का शुद्ध पवित्र राज्य तुम्हारे हृदय में होगा ।

तनिक विचार व विस्तार से देखो

दीवाल में क्या-क्या है ? मिट्टी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश । पर्वत को देखो । क्या अन्तर है ? पर्वत में मिट्टी, जल, अग्नि, वायु, आकाश है, परन्तु यह बढ़ता दिखाई देता है । कुत्ते, गधे, घोड़े की तुलना करो तो कुत्ते आदि में पांच तत्व हैं, बढ़ते भी हैं, परन्तु चलते फिरते सोते खाते पीते हैं । पर्वत में दीवाल के मुकाबले में विशेषता थी प्राण की, अब कुत्ते आदि में पांच तत्व भी हैं और प्राण भी; विशेषता है जीवात्मा की जो दौड़ता है, चलाता है, खिलाता-पिलाता है । वह निकल जाये तो कुत्ता घोड़ा न चल सकता है, न खा पी सकता है, न सो सकता है । अब मनुष्य प्राणी में पांच तत्व, प्राण, जीवात्मा के अतिरिक्त क्या है जो प्रेम करता है और आदर करता है, दया करता है और कृपा करता है । छोटे बालक में पांच तत्व, प्राण और जीवात्मा भी है; वह प्रेम करता है परन्तु सत्कार करना नहीं जानता । उसमें विशेष क्या है ? मन है, बुद्धि नहीं है । परन्तु एक उन्मत्त, जो अवस्था में बड़ा है, वह मनुष्य होकर न प्रेम करता है, न आदर करता है । उसमें क्या नहीं और क्या है ? पांच तत्व, प्राण, जीवात्मा भी है, परन्तु मन बुद्धि में विनाश आ गया ।

जितना जिसमें प्रेम और आदर का ज्ञान अधिक है उतना वह मनुष्य मन और बुद्धि से विकसित है । जितना प्रेम कम उतना मन का विकास कम, जितना आदर कम उतना बुद्धि का विकास कम ।

मनुष्य इस लिये पूर्ण साधन वाला कहा गया है कि इस में पांच तत्वों, जो सब भूतों में हैं, के अतिरिक्त प्राण और जीवात्मा जो इतर प्राणियों में हैं उनके अतिरिक्त मन और बुद्धि उसके पास हैं । प्राण बहुत श्रेष्ठ वस्तु है परन्तु प्राण के न रहने पर तो मनुष्य जलती अग्नि का एक बार भेंट हो जाता है पर

बुद्धि और मन न हो तो जीवित ही सदा के लिए तिरस्कृत रहता है, कभी सुख और शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकता ।

अमूल्य रत्न मनुष्य का मन और बुद्धि है जिससे यह एक मनुष्य बना, मननशील कहलाया ।

एक विचित्र गुत्थी

जीवात्मा जड़ वस्तुओं में नहीं, परन्तु पशु और मनुष्य में है । दोनों शब्दों के अन्तिम अक्षर का उच्चारण 'श' है, परन्तु उसका आकार जुदा-जुदा है । 'पशु' में (श) एक आंख वाला और 'मनुष्य' में दो आंख वाला (ष) है । पशु की चरम चक्षु तो दो ही दीखने में आती हैं परन्तु दोनों केवल भोग सम्बन्ध को देखती हैं, इसलिए 'पशु' में (श) एक आंख वाला है और मनुष्य के भोग और कर्म दोनों को इस लोक और परलोक की दो आंखें बना ली हैं, इसलिए मनुष्य का (ष) दो आंखों वाला है ।

आदर और प्रेम चाहते हो तो आदर और प्रेम करो

संसार में किसी भी और योनि का कोई प्राणी आदर और प्रेम अपनी जाति से नहीं पाता । यह दो ही गुण अथवा रत्न मनुप्य से चुम्बक, आकर्षण का काम करते हैं । इन्हीं से ही संगठन शक्ति और चरित्र बल बढ़ता है । मनुष्य अपनी जाति से प्रेम और आदर करता है, अपनी जाति से प्रम और आदर पाता है । प्रेम और आदर के साधन वाणी और हाथ ही हैं । ये बुद्धि से संचालित होते हैं । पशुओं में यह तीनों साधन नहीं हैं ।

बुद्धि से अपने आप को और परमेश्वर और संसार के प्राणियों के सम्बन्ध को पहचानो । वाणी से सद्-व्यवहार और प्रभु स्मरण, वेद वाणी का दान करो । हाथों से शुभ कमाओ और श्रेष्ठों, सद् पात्रों में दान करो । हाथों से सेवा, सहायता, परोपकार, यज्ञ, परमार्थ करते हुवे यश के भागी बनो ।

ओ३म् शम् !

प्रभु आश्रित् तपोवन देहरादून ता० २३-५-५२ अमावस्या

ओ३म्

परिशिष्ट

मानव भूल और ख़ता (गलती) मूर्त्त

परमात्मा की दया अपार है। जहां वह दयालु है वहां न्यायकारी भी है। पक्षपात रहित होकर न्याय करता है। महान् कर्म फल दाता है। दया तो वह बिना मांगे स्वभावतः करता है। सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि देव उसने बनाए और सबको संसार भर के प्राणियों की बिना किसी प्रतिकार की आशा के सेवा का भार सौंप दिया। वायु चलेगी तो सबको एक समान ही स्पर्श करेगी। सूर्य चमकता है, राव हो रंक, गरीब हो अमीर, धनी हो फकीर, दुष्ट हो शिष्ट, बच्चा हो बूढ़ा, स्त्री हो पुरुष—सबको एक समान ताप और प्रकाश देगा। मानव २१६०० श्वास २४ घंटे में लेता है, कोई कीमत नहीं देता। दिन को सूर्य उसके घर दर का प्रकाश करे, रात्रि को चन्द्रमा। कोई दाम नहीं लेते। प्रभु की दात अनमोल है, उसकी शान निराली है, वह सारे चमन का वाली है, उसकी दृष्टि तथा दया से कोई जीव नहीं रहता खाली है।

इतनी दया होते हुवे भी मानव उसकी दया और उपकारों को भूल जाता हैं ?

अहंकार के कारण

अहंकार परमेश्वर की दया और न्याय भुला देता है। आपको सुख सम्पत्ति मिली, सब कुछ मिला, आप परमेश्वर की कृपा को भूल गए। उदाहरण रूप में, आपके द्वार पर कोई साधु आया, आपको क्रोध आ गया। झट उसे अपशब्द प्रयोग करते हुए कहने लगे, मोटे मुष्टण्डे भीख पर निर्वाह कर रखा है ? कमा कर क्यों नहीं खाते ? यह सोचा कि यह भिखारी क्यों आया है ? वह दीन है, वह दीन बना क्योंकि पहले वह दाता न था, तब अपने हाथ से कुछ भी दान नहीं किया था। प्रभु ने मुझे दाता बनाया, बनने का सुअवसर दे रहा है। पहले भी मैं दाता था, अब भी दाता बन रहा हूं। कितनी कृपा भगवान् मुझ पर कर रहे हैं ! अपने कर्मों को क्रोध के कारण भूल गया। क्रोध से उपजते हैं द्वेष, ईर्ष्या, हठ और घृणा।

मानव ! तू भूल गया, परमेश्वर ने तुझ ऐसा क्यों बनाया ? जीवन को सफल करने के अवसर को खो दिया।

आज समय है कि हम मानव जीवन को सफल बनायें।
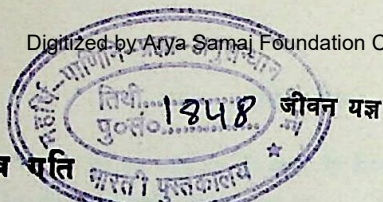
मानव गति

मानव गति आज बताता हूं। जब मनुष्य को पाप सताए, और रो पड़े, वह जीवन का प्रारम्भ है। और जब उनको दूर करने की कोशिश करता है, वह मानव गति है।

गरमी में दो चीजें पैदा होती हैं--एक स्वेद (पसीना) और दूसरे मैल। जल से धोने से स्वेद दूर हो जायेगा। धोने से पसीने की दुर्गन्ध निकलेगी, मैल नहीं निकलती। तपे हुवे जल में उसे तपाओ और फिर अकड़ी हुई मैल के तन्तुओं को नरम कर देगी, मैल उखड़ जायगी और फिर ज्ञान के साबुन और भक्ति के जल से धो दो, सारा मैल निकल जायगा। भक्ति सबसे जरूरी है, परन्तु तप और ज्ञान के बिना सफल नहीं हो सकती।

कवि ने कहा:—

भक्ति करो जन जन्म सुधारो रोम-रोम प्रभु देखन हारो।

मानव जीवन की गति तब होगी जब हम दुःख के परिणाम को समझें। जो धन के नाश को नाश समझता है वह निकृष्ट प्राणी है। जो शरीर की क्षति को नाश समझता है वह उससे अच्छा परन्तु मध्यम दर्जे का प्राणी है। और जो आत्मा के ह्रास को महान् क्षति समझता है वह उत्तम दर्जे का सावधान मनुष्य है।

रोगी रोगी है तो कमजोर भी रोगी है। कमजोरी रोग है, अवगुण है। मानव जीवन की सफलता केवल पापों को दूर कर देने की सफलता नहीं, इस लिये कि गधा घोड़ा भी मांस नहीं खाते, घूंस नहीं लेते, मिथ्या नहीं बोलते—यह सब निषेधात्मक गुण हैं—मुझे कमजोरी दूर करनी है, मैं क्रियात्मक गुणों को धारण करूंगा, पथ्य का सेवन करूंगा जब मैं स्वस्थ हूंगा, मुझे कोई पापी अथवा बुरा नहीं समझेगा। मन को दिव्य गुणों से भरपूर करना है, यह मानव जीवन की सफलता है।

बढ़िया गुण कौन सा है ?

संसार के अन्दर जितना भी कार्य किया जाये, शुभ से शुभ, वह सब तन और मन की कमाई से होगा। तन परमेश्वर का दिया हुआ है और कमाई—सर्व सम्पत्ति भी उसी की है, परन्तु एक चीज है जो मनुष्य के पास है, परमेश्वर के पास नहीं। वह अनादि काल से जीवात्मा के पास है। **वह है नमस्कार।**

छोटे के बड़े के पास जाने के तरीके का नाम ही नमस्कार है। जब यह (जीव) नमस्कार करता है, भगवान् उसको प्यार करते हैं।

भगवान् तीन चीजें देते हैं

भगवान् देते हैं हाथ, कि हाथ से ऐश्वर्य प्राप्त करे, तो हाथ ऐश्वर्य का

पर्यायवाची नाम है। दूसरे भगवान् देते हैं गोदी। गोदी देती है विश्राम, तो भगवान् दूसरी वस्तु विश्राम देते हैं।

तीसरी चीज भगवान् देते हैं आशीर्वाद। यह आशीर्वाद भगवान् का लिफ्ट है, बटन दबाया और ऊपर चढ़ गया। बस, जिसने भगवान् की दया और कृपा को नहीं भुलाया, जो पाप द्वारा सताए जाने पर रो पड़ता है और उसके दूर करने का यत्न करता है, जो प्रतिदिन भगवान् के उपकारों को याद करके उसको नमस्कार करता है, उसी की जीवन की गति ठीक है और उसी का जीवन सफल है।

—प्रभु आश्रित

॥ ओ३म् ॥

महात्मा श्री प्रभु आश्रित जी महाराज

की परम भक्त

श्रीमती शान्ति देवी अग्निहोत्री

द्वारा रचित

भ ज न

॥ ओ३म् ॥

वन्दना

हे प्रेम स्वरूप अनूप, प्रभु जी तेरा बंदन करते हैं।
तेरा बंदन करते हैं, प्रभु जी अभिनंदन करते हैं॥

यह जगत् महान् बनाया,
कन-कन में आप समाया।
कहीं नज़र न आवे रूप, प्रभु जी तेरा बंदन करते हैं॥

नभ में दो भाई चलते,
ज्योति शीतलता भरते।
कहीं छाया कहीं पर धूप, प्रभु जी तेरा बंदन करते हैं॥

तेरे देव उपकार कमावें,
जल थल में रस बरसावें।
तूं देखे बन कर मूक, प्रभु जी तेरा बंदन करते हैं॥

जिसने भी तुझ को ध्याया,
बन भक्त तुझे दरशाया।
तू अनुपम ज्योति स्वरूप, प्रभु जी तेरा बंदन करते हैं॥

॥ ओ३म् ॥

स्तुति

तेरा ब्रह्मांड है सारा, प्रभु प्यारा प्रभु प्यारा ।
तू सब का प्राण आधारा, प्रभु प्यारा प्रभु प्यारा ॥

तेरी शक्ति बड़ी महान्, ज़र्रे ज़र्रे में तेरा ज्ञान ।
ऋषि मुनि लगाते ध्यान, भक्ति कर करते गुण गान ।
यह सब तेरा है ईशारा । प्रभु प्यारा प्रभु प्यारा ॥

नभ में सूर्य चांद चलावे, कहीं तारों का जाल बिछावे ।
न्याय करे न गलती आवे, तेरा पार कोई ना पावे ।
करे जग में तू उजियारा । प्रभु प्यारा प्रभु प्यारा ॥

सारे जग का तू है वाली, करता सब की तू रखवाली ।
कोई जगह न तुझ से खाली, दाता तेरी शान निराली ।
करे सब दूर अंधियारा । प्रभु प्यारा प्रभु प्यारा ॥

प्रभु जी करुणा हाथ पसार, होवे तुझ से सच्चा प्यार ।
मुझ में रहे न क्रोध विकार, पाऊं तेरा मैं दीदार ।
तेरी माया का विस्तारा । प्रभु प्यारा प्रभु प्यारा ॥

॥ ओ३म् ॥

प्रभु महिमा

कैसा चक्र चलांदा प्रभु काल दा, दुनियां बनान वालिया ।

सृष्टी अद्भुत अजब निराली,
कहीं ज्योति कहीं रात है काली ।
तेरे नियमां नूं कोई भी न टालदा, दुनियां बनान वालिया ॥

गगन मंडल और ऊंचे पर्बत,
गहरे सागर बरसे अमृत ।
जल थल दे जीवां नूं है पालदा, दुनियां बनान वालिया ॥

दिव्य रतनों से भरी है सृष्टी,
हीरे नीलम देती पृथिवी ।
प्रभु हर काम तेरा है कमाल दा, दुनियां बनान वालिया ॥

नेति नेति बेद पुकारे,
योगी ध्यानी ज्ञानी हारे ।
कोई जोड़ बी न सके पत्ता डाल दा, दुनियां बनान वालिया ॥

भागां वाला जीव तेरा दर्शन पावे,
तप कर कर के पाप जलावे ।
ओह नूं दिसदा न कोई तेरे नाल दा, दुनियां बनान वालिया ॥

।। ओ३म् ।।

पुकार

मां ! बता दे मुझे तू कब मिलेगी ?
मेरे हृदय की ग्रंथी कब खिलेगी ?

तुझ को छोड़ा जगत में ही आई,
मुख मोड़ा नहीं चैन पाई ।
भारी संकट की घड़ियां हैं आई,
अज्ञान की रात्री कब टलेगी ?
मां ! बतादे मुझे तू कब मिलेगी ?

प्यारे प्यारे जिसे जाना अपना,
हो गये न्यारे यह सब था सपना ।
धन जन पर चले कोई बस ना,
पाश अहं की मेरी कब गलेगी ?
मां ! बता दे मुझे तू कब मिलेगी ?

युग युगान्तर से विषयों ने घेरा,
अन्दर बाहर है काला अन्धेरा ।
सच्चा साथी नहीं कोई मेरा,
मेहर की लहर मां कब चलेगी ?
मां ! बता दे मुझे तू कब मिलेगी ?

माता ! इक वार करुणा दिखा दे,
गोद में ले के अमृत पिला दे ।
आने जाने का झगड़ा मिटा दे,
भाग्यशाली घड़ी जब तू मिलेगी ।।
मां ! वता दे मुझे तू कब मिलेगी ?

॥ ओ३म् ॥

प्रार्थना

नाम धन का मैं भर लूं खज़ाना ।
अन्त में न पड़े पछताना ॥

नाम जप-जप मिला है यह नर तन ।
ध्यान रख-रख किया था ही सिमरन ।
प्रातः सायं था मन को लगाना । अंत में न पड़े पछताना ॥

नाम धन की ही महिमा भारी ।
सारे सपने हैं जन बेटे नारी ।
हीरे स्वांस न वृथा गंवाना । अंत में न पड़े पछताना ॥

पाप छल बल से जोड़ी है माया ।
यौवन धन बल को पा इतराया ।
नश्वर सुख का नहीं है ठिकाना । अंत में न पड़े पछताना ॥

प्रेम भक्ति को हृदय में भर दो ।
दिव्य शक्ति हो मेधा का वर दो ।
छूट जाए मेरा आना जाना । अंत में न पड़े पछताना ॥

नाम धन का मैं भर लूं खजाना ।
अन्त में न पड़े पछताना ॥

॥ ओ३म् ॥

पुकार

मेरे नाम का दर्पन है काला,
प्रभु किस विध इस को साफ़ करूं ?

काल अनादि से साथी,
इक पल भी चैन नहीं लेता ।
ममता माया का है जाला,
प्रभु किस विध इसको साफ करूं ?

निर्बल हूं युग युग की मारी,
तप साधन संयम कर न सकूं ।
अज्ञान का मुझ पर है ताला,
प्रभु किस विध इसको साफ करूं ?

योगी ध्यानी और ऋषियों ने,
तप कर कर इस को मांजा है ।
अहंकार बली का है भाला,
प्रभु किस विध इसको साफ करूं ?

प्रभु तेरी कृपा से महा पापी,
पल भर में ही तर जाते हैं ।
मेरे घर में करो अब उजियाला,
तेरी कृपा से मन को साफ़ करूं ।

मेरे मन का है दर्पन काला, प्रभु किस विध इसको साफ करूं ?

।। ओ३म् ।।

सत्संग महिमा

सत्संग की पावन गंगा में, जिसने आकर स्नान किया ।
दूई दुर्गुण सब दूर हुए, परमेश्वर को पहिचान लिया ।।

सत्संग है सागर अमृत का,
तन मन बुद्धि को शुद्ध करे ।
कोई विषय विकार न ठहर सके,
जीवन को उच्च महान् किया ।।

सत्य ज्ञान का साबुन सत्संग है,
युग-युग की मैल को धो देता ।
मोह ममता जाल भी टूटप ड़े,
अंतर मुख हो रस पान किया ।।

सत्संग सरोवर है मधु का,
हर अंग में भक्ति रस भर दे ।
जब प्रेम का झरना उमड़ पड़े,
जन-जन का कल्याण किया ।।

हर बार मिले लख बार मिले,
जो जन्म मिले रहूं सत्संग में ।
झुक जाए सर तेरे चरनों में,
कर जोड़ प्रभु तेरा ध्यान किया ।।

सत्संग की पावन गंगा में, जिसने आकर स्नान किया ।
दूई दुर्गुण सब दूर हुए, परमेश्वर को पहिचान लिया ।।

॥ ओ३म् ॥

प्रार्थना

दिव्य दर्शन हो तर जाऊं प्रभु,
कोई चाह न मन में हो मेरी।
तेरे सिमरन से तर जाऊं प्रभु,
कहीं रहे ज़रा न अंधेरी ॥

तेरे प्यार में सब कुछ खो जाऊं,
युग-युग की मैल को धो जाऊं।
ज़रा विषय विकार भी न लाऊं,
कोई चाह न मन में हो मेरी ॥

अन्तर मुख हो तेरा ध्यान रहे,
सन्मुख तेरी ज्योति महान् रहे।
आनन्द वीणा स्वर गान रहे।
कोई चाह न मन में हो मेरी ॥

सत्य ज्ञान प्रेम की हो भक्ति,
दृढ़ विश्वास की हो शक्ति।
प्रभु नाम रतन की हो मस्ती,
कोई चाह न मन में हो मेरी ॥

अमृत पी कर हो जाऊं अमर,
तेरे चरणों में झुक जाए सर।
ब्रह्मधाम हो केवल मेरा घर,
कोई चाह न मन में हो मेरी ॥

दिव्य दर्शन हो तर जाऊं प्रभु,
कोई चाह न मन में हो मेरी ॥

॥ ओ३म् ॥

पुकार

जीवन अद्भुत गीत, जग में जीवन अद्भुत गीत ।
कैसे करूं प्रभु प्रीत, जग में जीवन अद्भुत गीत ॥

सूर्य चढ़े अंधेरा छाए,
देख-देख कर समझ न आए ।
प्रभु जानी न तेरी रीत, जग में जीवन अद्भुत गीत ॥

युग-युग से जीना न आया,
मर-मर जी कर नर तन पाया ।
कभी होई न मेरी जीत, जग में जीवन अद्भुत गीत ॥

बंधु बांधव संपत पाकर,
विषयों में सब समय गंवा कर ।
कोई बना न मेरा मीत, जग में जीवन अद्भुत गीत ॥

चैन नहीं है भटक रही हूं,
करुणा कर प्रभु लटक रही हूं ।
कहीं समय न जाए बीत, जग में जीवन अद्भुत गीत ॥

जीवन अद्भुत गीत, जग में जीवन अद्भुत गीत ।
कैसे करूं प्रभु प्रीत, जग में जीवन अद्भुत गीत ॥

॥ ओ३म् ॥

पश्चात्ताप

दुनियां में सबसे प्यार किया,
प्रभु प्रेम का अमृत पी न सकी।
न याद रहा इकरार किया,
तेरा नाम सिमर कर जी न सकी॥

सब मात पिता बंधू भाई,
जो साथी नाती थे मेरे।
सब स्वार्थ था, न सार लिया,
प्रभु प्रेम का अमृत पी न सकी॥

रिश्ते संगी कई छूट गये,
कई रूठ गये कई टूट गये।
अपना समझा इतबार किया,
प्रभु प्रेम का अमृत पी न सकी॥

धन जन पाकर अहंकार बढ़ा,
भूलें पर भूलें करती रही।
अन्तर मुख हो न विचार किया,
प्रभु प्रेम का अमृत पी न सकी॥

अब चैन नहीं दिन रात प्रभु,
कहां जाऊं कैसे पाऊं तुझे?
चिन्तन करके न सुधार किया,
प्रभु प्रेम का अमृत पी न सकी॥

॥ ओ३म् ॥

प्रार्थना

नैय्या पार करो परम पूज्य परमेश्वर।
सभी अंधकार हरो, परम पूज्य परमेश्वर॥

चलती फिरती थकती आई, मिला न कहीं ठिकाना।
दु:ख संकट सब सहती आई, अन्न खाया कहीं दाना।
अभी सुधार करो, परम पूज्य परमेश्वर॥

नैय्या मेरी भव सागर में, डगमग-डगमग डोले।
चारों ओर है घुमर घेरी, खाती है हिचकोले।
सभी विकार हरो। परम पूज्य परमेश्वर॥

दीन दु:खी और निर्धन सारे, दर तेरे पर आते।
ज्ञानी ध्यानी भक्त प्यारे, झोली भर-भर जाते।
सत्य विचार भरो, परम पूज्य परमेश्वर॥

शुद्ध हृदय प्रभु कर दो मेरा, होवे ना मैं मेरी।
दिव्य नैन हो दर्शन तेरा, बन जाऊं मैं तेरी।
अपना आधार करो, परम पूज्य परमेश्वर॥

नैय्या पार करो परम पूज्य परमेश्वर।
सभी अंधकार हरो, परम पूज्य परमेश्वर॥

।। ओ३म् ।।

प्रार्थना

दीना बंधु दीना नाथ, मेरी डोरी तेरे हाथ।
डोरी ले लो अपने हाथ, बैठूं तव चरनन के पास ।।

डोरी कर दूं तेरे हवाले,
लहर-लहर प्रभु आप संभाले।
दो कर जोड़ है बिनती खास, मेरी डोरी तेरे हाथ ।।

जैसी तैसी हूं प्रभु तेरी,
डोरी पकड़ो करो न देरी।
कई जन्मों की है यह आस, मेरी डोरी तेरे हाथ ।।

खुल जाए तेरा ब्रह्म द्वार,
अमृत रस का हो संचार।
तुझ पर हो सच्चा विश्वास, मेरी डोरी तेरे हाथ ।।

दुर्गुण अवगुण द्वेष रहे ना,
इच्छा कोई शेष रहे ना।
कट जाए मृत्यु का पाश, मेरी डोरी तेरे हाथ ।।

दीना बंधु दीना नाथ, मेरी डोरी तेरे हाथ।
डोरी ले लो अपने हाथ, बैठूं तव चरनन के पास ।।

।। ओ३म् ।।

प्रभु स्तुति

रचने हारा तू है, फिर भी न्यारा तू है, ओ३म् प्यारा।
प्राणी मात्र को तेरा सहारा ।।

तेरी शक्ति का अन्त न पाया,
देख हस्ती को सर है झुकाया।
ऋषि गा-गा हारे, योगी भक्त प्यारे, ओ३म् प्यारा ।।
प्राणी मात्र को तेरा सहारा ।।

ऊंचे पर्वत हैं झरने निराले,
मीठे चश्में हैं अमृत के प्याले।
घास प्यारी लगे, फूल क्यारी सजे, ओ३म् प्यार ।।
प्राणी मात्र को तेरा सहारा ।।

कर्मों का चक्र ऐसा चलावे,
बिन यंत्रों के न्याय दिखावे।
जो करे सो भरे, न इनकार करे, ओ३म् प्यारा ।।
प्राणी मात्र को तेरा सहारा ।।

करुणा हो तेरी, तुझ को निहारूं,
तेरे चरनों में सब कुछ मैं वारूं।
होवे सच्ची लगन, रहूं तुझ में मगन, ओ३म् प्यारा ।।
प्राणी मात्र को तेरा सहारा ।।

॥ ओ३म् ॥

सच्चा रंग

रंग रंग रंग मेरा चोला रंग दे ।
कई जन्मों से मैं न रंगिया, भक्ति वाला रंग दे ॥

पिछड़ गई मैं ममता की मारी ।
युग-युग बीते आई न बारी ।
संग संग संग महापुरुषों का संग दे ॥
कई जन्मों से मैं न रंगिया······

सत्यं शिवं सुन्दर तेरा सागर ।
रंग न रंगाया प्रभु गुण गा कर ।
उमंग उमंग उमंग प्रेम की उमंग दे ॥
कई जन्मों से मैं न रंगिया······

ऋषि मुनियों ने है रंग रंगिया ।
दर तेरे वर मेघा दा मंगिया ।
भंग भंग भंग पाप कर भंग दे ॥
कई जन्मों से मैं न रंगिया······

प्रभु जी सच्चा रंग रंगा दो ।
दिव्य अमृत का पान करा दो ।
दंग दंग दंग दुनियां कर दंग दे ॥
कई जन्मों से मैं न रंगिया······

रंग रंग रंग मेरा चोला रंग दे ।
कई जन्मों से मैं न रंगिया, भक्ति वाला रंग दे ॥

॥ ओ३म् ॥

अर्चना

युग-युग बीते हैं मन में अंधेरा ।
करुणा कर दो प्रभु हो सवेरा ॥

क्रोटि जन्मों से काली घटाएं,
आगे पीछे व हैं दांए बांए ।
मार्ग पा न सकूं मैं तो तेरा ।
करुणा कर दो प्रभु हो सवेरा ॥

पांच शत्रु बड़े भारी भारी,
मैंतो निर्बल हूं ममता की मारी ।
चहुं ओर सभी ने है घेरा ।
करुणा कर दो प्रभु हो सवेरा ॥

सबकी सुनता तू है नाथ दाता,
दर से खाली न कोई है जाता ।
आने जाने का कष्ट घनेरा ।
करुणा कर दो प्रभु हो सवेरा ॥

दिव्य ज्योति से उज्ज्वल बना दो,
शुद्ध प्रेम का झरना बहा दो ।
मेरे घर में हो तेरा बसेरा ।
करुणा कर दो प्रभु हो सवेरा ॥

॥ ओ३म् ॥

प्रभु खोज

मैं ढूंढ ढूंढ कर हारी, प्रभु जी तुम मिले नहीं ।

छोड़ अमृत मृत लोक में आई,
चकाचौंध देखी भरमाई ।
फिरती मारी मारी, प्रभु जी तुम मिले नहीं ॥

दुनियां में अजब नज़ारे देखे,
सुन्दर संगी सारे देखे ।
देखी सम्पदा सारी, प्रभु जी तुम मिले नहीं ॥

इस जग में कहीं चैन न पाया,
सब कुछ से ही धोखा खाया ।
चहुं ओर मेरे अंधियारी, प्रभु जी तुम मिले नहीं ॥

मेरी आत्मा तुझे पुकारे,
दे दर्शन मैं जाऊं वारे ।
कर जोड़ है आहोजारी, प्रभु जी तुम मिले नहीं ॥

मैं ढूंढ ढूंढ कर हारी, प्रभु जी तुम मिले नहीं ।

।। ओ३म् ।।

नाम धन

नाम धन को सदा मैं बढ़ाती रहूं ।
ओ३म् का गीत पल-पल ही गाती रहूं ।।

सृष्टि कर्त्ता व धर्त्ता वही ओ३म् है ।
पालन करता व हरता वही ओ३म् है ।
अंतर मुख हो के दिव्य रस ही पाती रहूं ।
नाम धन को सदा मैं बढ़ाती रहूं ।।

माल धन धाम सुन्दर खज़ाना जो है ।
तन का आराम वैभव का आना जो है ।
सारे नश्वर हैं ममता हटाती रहूं ।
नाम धन को सदा मैं बढ़ाती रहूं ।।

मेरे प्यारे व परिवार सारा जो है ।
हैं दुलारे जो फैला पसारा जो है ।।
न्यारी रह कर आसक्ति हटाती रहूं ।
नाम धन को सदा मैं बढ़ाती रहूं ।।

दिव्य बुद्धि दो मस्ती रहे नाम की ।
मन की शुद्धि हो शक्ति रहे ध्यान की ।।
घट के अन्दर तेरा दर्श पाती रहूं ।
नाम धन को सदा मैं बढ़ाती रहूं ।।

॥ ओ३म् ॥

जगत मुसाफ़िरखाना है

मन मेरे ! क्यों लाये डेरे, जगत मुसाफिरखाना है ।

आया था विहार करने,
सब जग से प्यार करने,
मार के बैठा है क्यों धरने, जगत मुसाफिरखाना है ॥

जिस को तू कहता अपना,
है सब दिन रात का सपना,
इस में आस किसे की रख ना, जगत मुसाफिरखाना है ॥

सुन्दर मकान घेरा,
इस में कहीं नाम न तेरा,
फिर क्यों कहता मेरा मेरा, जगत मुसाफिरखाना है ॥

साज औ सामान लाए,
बंगले हैं खूब सजाए,
कोई न तेरा साथ निभाए, जगत मुसाफिरखाना है ॥

जोड़ी है माया नश्वर,
साथ न जाए तिल भर,
फंसा रहता है क्यों दिन भर, जगत मुसाफिरखाना है ॥

मन ले मन ! मेरा कहना,
प्रभु भक्ति सुन्दर गहना,
सिमरन में दिन रात ही रहना, जगत मुसाफिरखाना है ॥

॥ ओ३म् ॥

तृष्णा

मेहनत कर-कर धन कमाया, तृष्णा फिर भी मोई ना।
कीता वायदा याद न आया, मन दी मैल भी धोई ना॥

सौ से बना लख करोड़ी,
जमा कराए भर तैज़ोड़ी,
पाप करन विच कसर न छोड़ी, तृष्णा फिर भी मोई ना॥

बन गये दस व बीस मकान,
फर्श गलीचे आली शान,
बढ़िया-बढ़िया बने सामान, तृष्णा फिर भी मोई ना॥

नश्वर धन सं बढ़ता जाए,
अन्दर-अन्दर हर्ष मनाए,
गुण ईश्वर दे कभी न गाए, तृष्णा फिर भी मोई ना॥

दान धर्म से ही मुख मोड़ा,
परम पिता से नाता तोड़ा,
माया ने फिर साथ ही छोड़ा, तृष्णा फिर भी मोई ना॥

भर ले नाम रतन धन सागर,
भक्ति करके प्रभु गुण गाकर,
सच्चे दिल से ओ३म् सिमर कर, तृष्णा पास खलाए ना॥

॥ ओ३म् ॥

महापुरुषों की याद

भारत की दिव्य धरती है, महापुरुष ही आया करते हैं ।
यह रचना सुन्दर लगती है, महापुरुष ही आया करते हैं ॥

योगी यती ऋषीवर सारे, इस धरती पर ही आए हैं ।
जपी तपी और भक्त प्यारे, सत्य उपदेश सुनाए हैं ।
यह सब ईश्वर की शक्ति है, महापुरुष ही आया करते हैं ॥

रामचन्द्र मर्यादा लेकर, योगी कृष्ण भगवान् हुए ।
गुरु नानकदेव जी नाम सिमर कर, गांधी पूज्य महान् हुए ।
इनमें दिव्य ज्योति जगती है, महापुरुष ही आया करते हैं ॥

श्री विरजानंदजी तपस्वी, अंतरमुख होकर ध्यान किया ।
ऋषि दयानन्द तेजस्वी, वेदों का अमृत पान किया ।
सत्य वाणी मुख से सजती है, महापुरुष ही आया करते हैं ॥

'प्रभुआश्रित' भक्ति में रंगकर, वेदों का ही प्रचार किया ।
अंतरमुख हो ध्यान लगाकर, गायत्री यज्ञ का विस्तार किया ।
प्रभु शक्ति की ही हस्ती है, महापुरुष ही आया करते हैं ॥

आनंद स्वामीजी जीवन भर, मां गायत्री के गुण गाते रहे ।
वेद अमृत का झंडा लेकर, हंसते और हंसाते रहे ।
सुन्दर आकृति जचती है, महापुरुष ही आया करते हैं ॥

महापुरुषों की याद मनाएं, हम जीवन का सुधार करें ।
गुण सब के अपने में लाएं, बुद्धि का विस्तार करें ।
अंग-अंग में प्रभु की शक्ति है, महापुरुष ही आया करते हैं ॥

॥ ओ३म् ॥

पुकार

मैं पुकारूं पुकारूं पुकारूं, मेरी सुन लो प्रभु जी पुकार।
तेरे चरणों में सब कुछ वारूं, मेरी सुन लो प्रभु जी पुकार॥

सब का स्वामी तू है वेद गाते,
अंतरयामी तू है योगी ध्याते।
तुच्छ बुद्धि है कैसे निहारूं, मेरी सुन लो प्रभु जी पुकार॥

कर-कर बिनती ही युग-युग बीते,
तुझ को पाने के साधन न कीते।
अंतर मुख हो ज़रा न विचारूं, मेरी सुन लो प्रभु जी पुकार॥

अशक्त हूं, मुझ में ऐसी न शक्ति,
मस्त हूं माया में, न है भक्ति।
पल-पल विषयों की मार से हारूं, मेरी सुन लो प्रभु जी पुकार॥

आनन्द सागर से अमृत पिला दो,
रोम-रोम में झरना बहा दो।
शुद्ध हृदय हो ओ३म् उचारूं, मेरी सुन लो प्रभु जी पुकार॥

मैं पुकारूं पुकारूं पुकारूं, मेरी सुल लो प्रभु जी पुकार।
तेरे चरणों में सब कुछ वारूं, मेरी सुन लो प्रभु जी पुकार॥

।। ओ३म् ।।

पांच शत्रु

शत्रु पांच बड़े बलवान्, कैसे बच पाऊं भगवान् !

काल अनादि से हैं साध्य,
आगे पीछे रहते पास,
धारण करते नहीं सत्य ज्ञान। कैसे बच पाऊं भगवान् !

मोह तो कई-कई रूप दिखावे,
अन्तर वृत्ति टिक न पावे,
विचलित कर देता है ध्यान। कैसे बच पाऊं भगवान् !

अहं की शक्ति है बड़ी भारी,
क्रोध की हस्ती है महा मारी,
काम भयंकर लाए तूफान। कैसे बच पाऊं भगवान् !

लोभ तो ऐसी चालें चलता,
छल फ़रेब कपट है भरता,
कर न पाऊं दूर अज्ञान। कैसे बच पाऊं भगवान् !

प्रभु कर जोड़ विनय है मेरी,
ज्योत जगावो करो न देरी,
मुझ को दो भक्ति वरदान। सब से बच पाऊं भगवान् !

।। ओ३म् ।।

शुभ कामना

कैसा यह कैसा यह शुभ दिन आया, सभी को बहुत वधाई हो ।

वेदों के यज्ञ रचावें,
भगवान देखने आवें
आशीर्वाद दे जावें । सभी को बहुत वधाई हो ।।

प्रभु ने शुभ घड़ी दिखलाई,
मन इच्छा पूरी कराई,
कीती है सफल कमाई । सभी को बहुत वधाई हो ।।

धन संपत जितनी पावें,
कर जोड़ के सीस झुकावें,
दुनियां के दर्द मिटावें । सभी को बहुत वधाई हो ।।

सुख शांति आनंद पाकर,
जीवन को सफल बनाकर,
भक्ति का रंग चढ़ा कर । सभी को बहुत वधाई हो ।।

कैसा यह कैसा यह शुभ दिन आया, सभी को बहुत वधाई हो ।।

॥ ओ३म् ॥

मां की शरण

मेधा वर दे अमृत भर दे, तेरे द्वारे आई मां !
तेरे द्वारे आई मां ! तुझे भूलूं कभी न मां !!

तू ही है सच्ची महतारी,
मैं हूं जन्म-जन्म की मारी,
देर करो न मेरी वारी । तेरे द्वारे आई मां !!

तुझ को वर ले मेरी बुद्धि,
होवे अंतःकरण की शुद्धि,
मन में रहे ज़रा न ख़ुदी । तेरे द्वारे आई मां !!

पाकर तुझ से भर्गः शक्ति,
कर लूं परम पवित्र भक्ति,
ममता की न रहे आसक्ति । तेरे द्वारे आई मां !!

तुझ पर हो सच्चा विश्वास,
जानूं मानूं अपने पास,
पूर्ण कर दो मेरी आस । तेरे द्वारे आई मां !!

मेधावर दे अमृत भर दे, तेरे द्वारे आई मां !
तेरे द्वारे आई मां ! तुझे भूलूं कभी न मां !!

।। ओ३म् ।।

श्रद्धांजली

हो मेरा प्रणाम गुरुवर, हो मेरा प्रणाम।
संपन्न घर में जन्म मिला था,
बचपन पूरा नहीं खिला था,
चले गये पिता महान्। गुरुवर, हो मेरा प्रणाम ।।
बड़े कष्टों से मां ने पाला,
हृदय में भर-भर प्रेम प्याला,
धर धैर्य किया गुणगान। गुरुवर, हो मेरा प्रणाम ।।
गायत्री महामंत्र को अपनाया,
देव यज्ञ को पिता बताया,
श्रद्धा भक्ति कर ध्यान। गुरुवर, हो मेरा प्रणाम ।।
व्रत रखे फिर भारे भारे,
दिव्य दर्शन पाए न्यारे न्यारे,
कर प्रभु का अमृत पान, गुरुवर हो, मेरा प्रणाम ।।
सुखी दुःखी के बन गये प्यारे,
सब कहते महाराज हमारे,
बन गये पूज्य महान्। गुरुवर, हो मेरा प्रणाम ।।
सब को सत्य उपदेश सुनाकर,
यज्ञ गायत्री का जाप बता कर,
दिया धर्म का ज्ञान। गुरुवर, हो मेरा प्रणाम ।।
बड़े बड़े महायज्ञ कराए,
दुर्गुण अवगुण सभी हटाए,
हुआ सब का कल्याण। गुरुवर, हो मेरा प्रणाम ।।
योग साधना शिविर लगा कर,
भय भ्रम सब भ्रांति मिटा कर,
दूर किया अज्ञान। गुरुवर, हो मेरा प्रणाम ।।
ऋणी रहेंगे सदा तुम्हारे,
जब तक सूर्य चांद सितारे,
पहुंचे ब्रह्म के धाम। गुरुवर, हो मेरा प्रणाम ।।

॥ ओ३म् ॥

प्रभु रचना

तू धन्य मेरे दाता, कैसा रचाया है संसार ॥

निराकार तू आप कहावे, रचना न्यारी न्यारी ।
बिना हाथों सब जगत बनावे, महिमा भारी भारी ।
तू सकल विधाता । कैसा रचाया है संसार ॥

बिन खंबे आकाश खड़ा हैं, जल में ठहरी पृथिवी ।
बिन तारों सूर्य चांद अड़ा है, देख सके न दृष्टी ।
कोई अन्त न पाता । कैसा रचाया है संसार ॥

लम्बे-लम्बे पेड़ खड़े हैं, कोमल घास निराली ।
आगे ऊपर दाएं बांए, हर्ष देवे हरियाली ।
तू नजर न आता । कैसा रचाया है संसार ॥

देख-देख प्रभु रचना तेरी, क्या-क्या गुण मैं गावां ।
ज्योत जगा प्रभु करो न देरी, चरनी सीस झुकावां ।
तू सच्चां माता । कैसा रचाया है संसार ॥

तू धन्य मेरे दाता, कैसा रचाया है संसार ॥

॥ ओ३म् ॥

भरा मेला

असी भरया मेला छड जाणां ।
ऐह वेला फिर-फिर नहीं आणा ॥

किस्मत से सब मिले हैं सारे,
बहन भाई हैं न्यारे न्यारे ।
यज्ञ करना गीत प्रभु गाणां,
असी भरया मेला छड जाणां ॥
पर्वत देखे भारी भारी,
प्रभु की रचना न्यारी न्यारी ।
प्रेम से है पीड़ां खाणां,
असी भरया मेला छड जाणां ॥
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी,
बने व्यापारी लखी करोड़ी ।
साथ नहीं कुछ ले जाणां,
असी भरया मेला छड जाणां ॥
इक दिन सब को जाना होगा,
कर्मों का फल पाना होगा ।
सब कुछ एत्थे रह जाणां,
असी भरया मेला छड जाणां ॥
दुर्लभ है मानव का जीवन,
शुद्ध हृदय से कर ले सिमरन ।
नहीं होगा फिर पछताणां,
असी भरया मेला छड जाणां ॥
भुल चुक मेरी माफ ही करना,
ईश्वर पर विश्वास ही करना ।
मीठा हो प्रभु का भाणां,
असी भरया मेला छड जाणां ॥

॥ ओ३म् ॥

पुकार

भगवान पुकार मेरी सुन लो करो न देरी ।

दीनों व दुखियों की तू,
सुनता है आहोजारी ।
कर जोड़ बिनती मेरी,
सुन लो करो न देरी ॥

लटकी रही अटक कर,
मोह पाश के भंवर में ।
विषयों की है अंधेरी,
सुन लो करो न देरी ॥

घनघोर हैं घटाएं,
तुझ को मैं पाऊं कैसे ?
ज्योति जगा दो मेरी,
सुन लो करो न देरी ॥

मेरी मैं का तुच्छ बिन्दु,
ज्ञान अग्नि में जला दो ।
बुद्धि विमल हो मेरी,
सुन लो करो न देरी ॥

भगवान पुकार मेरी सुन लो करोन देरी ।

॥ ओ३म् ॥

रक्षा बंधन

आया पर्व महान् है, राखी की यह शान है।
बहन भाई को राखी बांधे, प्रेम भरी मुस्कान है॥

प्रांत:काल है समय सुहाना, यज्ञ की शोभा न्यारी है।
बड़े प्रेम से प्रभु गुण गाना, सारे नर और नारी हैं।
यह जीवन का कल्यान है, राखी की यह शान है॥

प्रभु देव की पूर्ण सृष्टि, पूर्णिमा का चांद निराला है।
मानव की होवे सम दृष्टि, धुल जावे मन काला है।
बन जाए देव महान् है, राखी की यह शान है॥

शुद्ध विचार हैं इस राखी में, भैय्या यह स्वीकार करो।
सच्चा प्यार है इस राखी में, दिव्य गुण भर उपकार करो।
वेद अमृत सच्चा ज्ञान है, राखी की यह शान है॥

जीवन सफल करो इस जग में, है मेरी शुभ कामना।
सूर्य चांद सम चमको नभ में, मन की है सत्य भावना।
मां गायत्री का वरदान है, राखी की यह शान है॥

आया पर्व महान् है, राखी की यह शान हैं।
बहन भाई को राखी बांधे, प्रेम भरी मुस्कान है॥

॥ ओ३म् ॥

पुकार

विकल जिया तरस रहा, कोई प्रभु से मिला दो री।

निर्बल हूं मैं दूर किनारा,
काली घटाएं आर न पारा।
कोई आकर राह दिखा दो री,
नैनों से पानी बरस रहा।
विकल जिया तरस रहा, कोई प्रभु से मिला दो री॥

कभी तो थी सचखंड की वासी,
आनंद में नहीं फूली समाती।
कोई ममता का जाल हटा दो री,
भूली मैं जाता हर्ष रहा।
विकल जिया तरस रहा, कोई प्रभु से मिला दो री॥

प्रभु जी तुम से नाता तोड़ा,
कोटि जन्म से पड़ा बिछोड़ा।
सत्य ज्ञान की ज्योत जगा दो री,
पापों का बादल बरस रहा।
विकल जिया तरस रहा, कोई प्रभु से मिला दो री॥

दया का सागर नाम है तेरा,
भर मेरी गागर काम है तेरा।
प्रभु भक्ति का रंग चढ़ा दो री,
परम आनंद बरस रहा॥
विकल जिया तरस रहा, कोई प्रभु से मिला दो री॥

॥ ओ३म् ॥

सच्चा प्रेम

जब प्यार हुआ परमेश्वर से, धन धाम खजाना भूल गया ।
फिर प्यास लगी प्रभु दर्शन की, अपना व बिगाना भूल गया ॥

हृदय में तरंगें उठने लगीं,
प्रभु के शरणागत होने की ।
जब मस्त हुआ पी प्रेम सुधा,
दुःख दर्द भी अपना भूल गया ॥

ईश्वर की जब दृष्टि पड़ी,
दीन भक्त की हालत पर ।
जिस दिल में छिपाया प्रीतम को,
वह दिल भी छुपाना भूल गया ॥

परमेश्वर का दीदार हुआ,
कुछ होश न अपनी बाकी रही ।
इक बार झुका जो चरणों में,
फिर सर को उठाना भूल गया ॥

आनंद का सागर उमड़ पड़ा,
जब भक्त के हृदय मंदिर में ।
मैं नर हूं तू नारायण है,
यह भेद बताना भूल गया ॥

जब प्यार हुआ परमेश्वर से, धन धाम खजाना भूल गया ।
फिर प्यास लगी प्रभु दर्शन की, अपना व बिगाना भूल गया ॥

॥ ओ३म् ॥

वधाई

मिल कर सारे देओ वधाई, जो भी हैं मैंहमान ।
बालक पूज्य बने गुणवान ॥

दयानन्द सा हो ब्रह्मचारी, श्रद्धानन्द सा हो हितकारी ।
राम चन्द्र सा आज्ञाकारी, भीष्म जैसा हो बलधारी ॥
सब जग इस की याद मनावे, चमके सूर्य समान ।
बालक पूज्य बने गुणवान ॥

पी अमृत का प्रेम प्याला, हो भक्ति का रंग निराला ।
अंधकार हटा सब करे उजाला, नाम रतन से हो मतवाला ॥
सत्य धर्म का पालन करके, योगी बने महान् ।
बालक पूज्य बने गुणवान ॥

शुद्ध हृदय से करके चिन्तन, दाता बन कर पाले निर्धन ।
स्वांस स्वांस में ओं हो सिमरन, तन मन धन हो प्रभु के अर्पन ।
सब के दिल पर राज्य करे यह, पहुंचे ब्रह्म के धाम ।
बालक पूज्य बने गुणवान ॥

मिल कर सारे देओ वधाई, जो भी हैं मैंहमान ।
बालक पूज्य बने गुणवान ॥

॥ ओ३म् ॥

गमन

इक दिन तेरा यहां से गमन होगा, मन क्यों पाप करे ।
तेरा अंत समय न भजन होगा, मन क्यों पाप करे ॥

कर इकरार तू जग में आया, बचपन खेल में बीता ।
खा सो पी कर वकत गंवाया, न भजन प्रभु दा कीता ।
प्रभु चरनों में कैसे नमन होगा, मन क्यों पाप करे ॥

परम धाम का तू था वासी, फिरता मारा मारा ।
ओ३म् ही था तेरा सच्चा साथी, कुछ सोचा नहीं विचारा ।
किस दिन फिर प्रभु का भजन होगा, मन क्यों पाप करे ॥

मात पिता भाई बहन और नारी, किसे न साथ निभाया ।
बेटे पोते सब संसारी, सपने की है साया ।
तेरे संग किसी का चल न होगा, मन क्यों पाप करे ॥

पाप कमा कर माया जोड़ी, सुन्दर भवन बनाए ।
फिर भी लगदी थोड़ी थोड़ी, फ़र्श हैं खूब सजाए ।
जाए साथ न कोई तेरे धन होगा, मन क्यों पाप करे ॥

प्रभु से सच्ची प्रीत लगा कर, जीवन सफल बना ले ।
दुविधा दूई सभी हटा कर, घट में दर्शन पा लै ।
पावें मुक्ति न जन्म मरन होगा, मन क्यों पाप करे ॥

॥ ओ३म् ॥

जग के नज़ारे

देख दुनियां के झूठे झमेले, तो मन को हटाना पड़ा ।
सारी आयू यूं ही खेल खेले, प्रभु गीत गाना पड़ा ॥

गर्भ का दुःख भयंकर लटक कर सहा ।
मौज बचपन बहारे मटक कर रहा ।
मां का ही प्यार था, सब ही गुलज़ार था ।
खेल कूद में वकत बिताना पड़ा ॥

यौवन में धन को पा सत्य न धारण किया ।
विषयों में मन लगा ना ही सिमरन किया ।
तन के सुख मन के दुःख जन के रुख में ।
समय को व्यर्थ गंवाना पड़ा ॥

इस तरह हर्ष संकट ही आते रहे ।
कई हंसाते रहे, कई रुलाते रहे ।
जिसको अपना किया उसने धोखा दिया ।
फिर तो अपने कदम को बढ़ाना पड़ा ॥

प्रभु जी कृपा करो आई तेरी शरन ।
तीनों ताप हरो रहूं तुझ में मगन ।
बिनती स्वीकार हो, तेरा दीदार हो ।
तेरे चरनों में सर को झुकाना पड़ा ॥

देख दुनियां के झूठे झमेले, तो मन को हटाना पड़ा ।
सारी आयू यूं ही खेल खेले, प्रभु गीत गाना पड़ा ॥

॥ ओ३म् ॥

प्रभु शरण

तुम्हीं जो अपनी शरण में लेते,
हे नाथ फिरती मैं क्यों द्वारे द्वारे।
अपना सहारा मुझ को जो देते,
क्यों मैं लेती कई कई सहारे॥

धाम न जानूं ध्यान न जानूं,
महिमा तेरी महान् न जानूं।
करुणा से मेरी झोली जो भरते,
काहे को फिरती मैं हाथ पसारे॥

तुम्हीं से मैंने लगन लगाई,
तुम ही को पाने तेरे दर आई।
अपने बनाती मैं क्यों बिगाने,
हे नाथ रहते सदा तुम हमारे॥

करुणा दिखाओ देर न लाओ,
युग युग की बिछड़ी गोद बिठाओ।
दुई व ममता सब दूर करते,
दो कर जोड़ मैं आई तेरे द्वारे॥

।। ओ३म् ।।

सत्संग

सोहड़े लगदे महल चौबारे,
जित्थे सत्संग लगदा ।
ओहथे आंवन भक्त प्यारे,
जित्थे सत्संग लगदा ।।

जिस घर दे विच सत्संग लगदा,
पाप दरिद्र उत्थों भजदा ।
पाप बी करन किनारे,
जित्थे सत्संग लगदा ।।

कन कन उस दा होवे पवित्र,
जो आवे बन जावे मित्र ।
सब लैंदे प्रेम हुलारे,
जित्थे सत्संग लगदा ।।

सत्संग दे विच अमृत बरसे,
प्रभु मिलन नूं आत्मा तरसे ।
शुद्ध हृदय ओ३म् उच्चारे,
जित्थे सत्संग लगदा ।।

जीवन का आधार है सत्संग,
मानवता का सार है सत्संग ।
डूब रहे को तारे,
जित्थे सत्संग लगदा ।।

जो भी बने सत्संग दा प्यारा,
सब दुःख भ्रम मिटावे सारा ।
वह पहुंचे ब्रह्म के द्वारे,
जित्थे संत्सग लगदा ।।

।। ओ३म् ।।

भरोसा क्या !

सहारे छूट जाते हैं, सहारों का भरोसा क्या !
प्यारे रूठ जाते हैं, प्यारों का भरोसा क्या !!

दिलासे जो जहां के हैं, सभी रंगीन नज़ारे हैं।
नज़ारे छूट जाते हैं, नज़ारों का भरोसा क्या !!

तमन्नाएं जो तेरी हैं, फव्वारे हैं यह सावन के।
फव्वारे फूट जाते हैं, फव्वारों का भरोसा क्या !!

यह खूबसूरत गुब्बारे हैं, तू इन पर मत फ़िदा हो मन।
गुब्बारे छूट जाते हैं, गुब्बारों का भरोसा क्या !!

ओ३म् का नाम ले कर के, तू दुनियां से किनारा कर।
किनारे टूट जाते हैं, किनारों का भरोसा क्या !!

सहारे छूट जाते हैं, सहारों का भरोसा क्या !
प्यारे रूठ जाते हैं, प्यारों का भरोसा क्या !!

॥ ओ३म् ॥

मतलब का संसार

मतलब का संसार, है सब मतलब का ।

मतलब की है दुनियादारी,
मतलब के हैं सब संसारी ।
मतलब का व्यवहार, है सब मतलब का ॥

मतलब का सब कुटंब कबीला,
मतलब से है बना वसीला ।
मतलब का परिवार, है सब मतलब का ॥

मात पिता भाई बन्धु प्यारे,
मतलब के बेटे पोते सारे ।
मतलब की है नार, है सब मतलब का ॥

चार दिनों का है यह मेला,
करना है फिर कूच अकेला ।
ओ३म् से कर ले प्यार, है सब मतलब का ॥

मतलब का संसार, है सब मतलब का ॥

।। ओ३म् ।।

मन की शुद्धि

रहूं तुझ में मगन, शुद्ध करो मेरा मन।
करुणा कर दो, मेरे हृदय में दिव्य गुण भर दो ।।

दिव्य धरती पर जन्म है पाया,
दिव्य देवों ने जीवन बढ़ाया।
जानूं इसका मर्म, शुद्ध करो मेरा मन ।।

दिव्य रचना है शिक्षा दिलाती,
दिव्य संदेशों को है बताती।
करूं इसका मनन, शुद्ध करो मेरा मन ।।

शुद्ध हृदय हो तुझ को बसाऊं,
दिव्य अमृत का आनन्द पाऊं।
न हो आवागमन, शुद्ध करो मेरा मन ।।

रहूं तुझ में मगन, शुद्ध करो मेरा मन।
करुणा कर दो, मेरे हृदय में दिव्य गुण भर दो ।।

॥ ओ३म् ॥

बड़-बड़ हार गये

बड़े-बड़े हार के चले, पता नहीं प्रभु खेल निराली दा ।

रावण जैसे प्रतापी राजे,
जिनके दर पर बाजन बाजे ।
आ गये वह काल दे तले,
पता नहीं प्रभु खेल निराली दा ॥

कौड़ी-कौड़ी माया जोड़ी,
सेठ व्यापारी लखी करोड़ी ।
खाली हत्थीं चले,
पता नहीं प्रभु खेल निराली दा ॥

धन दौलत सब महल अटारी,
प्यारे प्यारे रिश्तेदारी ।
छोड़ मुसाफिर चले,
पता नहीं प्रभु खेल निराली दा ॥

हीरा जन्म इसको चमका ले,
भक्ति करके प्रभु रिझा ले ।
अन्त नूं तलियां न मले,
पता नहीं प्रभु खेल निराली दा ॥

बड़े-बड़े हार के चले, पता नहीं प्रभु खेल निराली दा ॥

।। ओ३म् ।।

ओ३म् महिमा

पत्ते-पत्ते डाली-डाली मेरा ओ३म् वसदा ।
सारी सृष्टी दा है वाली, मेरा ओ३म् वसदा ।।

ऐह जग ओ३म् दा विस्तार,
सब विच बैठा रचने हार ।
विरला जाने इस दी सार, मेरा ओ३म् वसदा ।।

आगे पीछे दांए बांए,
फैली इस की दशों दिशाएं ।
रचना प्रभु की याद दिलाएं, मेरा ओ३म् वसदा ।।

जो भी अंतर ध्यान लगावे,
घट के अन्दर दर्शन पावे ।
फिर न लख चौरासी आवे, मेरा ओ३म् वसदा ।।

पत्ते-पत्ते डाली-डाली मेरा ओ३म् वसदा ।
सारी सृष्टी दा है वाली, मेरा ओ३म् वसदा ।।

॥ ओ३म् ॥

बसन्त

फूलों के बाग अन्दर, मेरा यह मनवा खेले ।
रहता तू सब के अन्दर, चरनों में मुझ को ले ले ॥

फूलों की शोभा न्यारी,
रंगत है प्यारी प्यारी ।
तुझ पर जावां बलिहारी, चरनों में मुझ को ले ले ॥

कारीगर तू है न्यारा,
सब जग तेरा विस्तारा ।
भक्तों को लगता प्यारा, चरनों में मुझ को ले ले ॥

फूल हैं रंग बिरंगी,
अद्भुत महके सुगंधी ।
सब का तू सच्चा संगी, चरनों में मुझ को ले ले ॥

आहा कमाल तेरा,
सब में जमाल तेरा ।
यह सृष्टि सब माल तेरा, चरनों में मुझ को ले ले ॥

फूलों के बाग अन्दर, मेरा यह मनवा खेले ।
रहता तू सब के अन्दर, चरनों में मुझ को ले ले ॥

॥ ओ३म् ॥

दया की पुकार

दया तेरी दया तेरी दया तेरी रहे मुझ पर।
मैं मेरी मैं मेरी रहे न मुझ में इक तिल भर॥

तेरे कन-कन में है भगवान्,
दया की धारा बहती है।
बुद्धि निर्मल करो मेरी,
दया तेरी दया तेरी दया तेरी॥

महापुरुषों की दिव्य धारा,
गगन मंडल में व्यापक है।
जगा दो ज्योत अब मेरी,
दया तेरी दया तेरी दया तेरी॥

सुमन कर दो मेरे मन को,
उज्ज्वल हो हृदय भगवन्।
कभी हो घुमर घेरी,
दया तेरी दया तेरी दया तेरी॥

रहे न होश तन मन की,
करूं दर्शन प्रभु तेरा।
करो करुणा मैं हूं तेरी,
दया तेरी दया तेरी दया तेरी॥

दया तेरी दया तेरी दया तेरी रहे मुझ पर।
मैं मेरी मैं मेरी रहे न मुझ में इक तिल भर॥

॥ ओ३म् ॥

मिलोगे कहां पर ?

प्रभु जी बताओ मिलोगे कहां पर ?

बन - बन में ढूंढ़ा, गुफाओं में देखा।
नदी में भी झांका न पाया ही तट पर।
प्रभु जी बताओ मिलोगे कहां पर ?

नहीं चैन दिन में न विश्राम रात्री।
भटकती रही मैं हमेशा ही दर - दर।
प्रभु जी बताओ मिलोगे कहां पर ?

युग-युग ही गुजरे हैं मर मर व जी कर।
आनन्द मिला न रही चैन से घर।
प्रभु जी बताओ मिलोगे कहां पर ?

बहा दो मेरे देव मेहर की गंगा।
बसो मेरे घट में यह सूना पड़ा घर।
प्रभु जी बताओ मिलोगे कहां पर ?

॥ ओ३म् ॥

भूल गई

भूल गई ओ३म् नाम, अच्छी नहीं बात है।
चार दिन की चांदनी, फिर अंधेरी रात है ॥

बचपन खेल बीता गुजरी जवानी है।
जन्म अमोलक सार न जानी है।
हीरे भी लुटाए सारी आयु बीती जात है।
चार दिन की चांदनी, फिर अंधेरी रात है ॥

विषयां विकारां वाली चादर लपेट के।
मनवा तू सोएगा कब तक लेट के।
उठ, अब देख सुन्दर हो गई प्रभात है।
चार दिन की चांदनी, फिर अंधेरी रात है ॥

धन माल महल माड़ी अपने बनाए अब।
अंत समय तेरे संग कोई भी न जाए सब।
रोए पछताए कोई सुने नहीं बात है।
चार दिन की चांदनी, फिर अंधेरी रात है ॥

इक इक स्वांस विच ओ३म् उच्चार लै।
श्रद्धा प्रेम भक्ति से जीवन सुधार लै।
सोम रस पी ले तों चौरासी कट जात है।
चार दिन की चांदनी, फिर अंधेरी रात है ॥

भूल गई ओ३म् नाम, अच्छी नहीं बात है।
चार दिन की चांदनी, फिर अंधेरी रात है ॥

।। ओ३म् ।।

श्री कृष्णजन्माष्टमी

जगत उपकार करने को कृष्ण भगवान आए थे ।
हलका भार करने को कृष्ण भगवान आए थे ।।

मथुरा में जन्म ले कर पले आ कर के गोकल में ।
यशोदा प्यार करने को कृष्ण भगवान आए थे ।।

पिता माता का दु:ख हर कर पछाड़ा कंस राजा को ।
सत्य विचार भरने को कृष्ण भगवान आए थे ।।

अविद्या सब हटा कर के बताया मार्ग वेदों का ।
शुद्ध व्यवहार करने को कृष्ण भगवान आए थे ।।

श्रद्धा प्रेम भक्ति से बने सोलह कला पूर्ण ।
दिव्य गुण संचार करने को कृष्ण भगवान आए थे ।।

झुकाऊं सीस श्रद्धा से महा पुरुषों के चरनों में ।
नैय्या पार करने को कृष्ण भगवान आए थे ।।

जगत उपकार करने को कृष्ण भगवान आए थे ।
हलका भार करने को कृष्ण भगवान आए थे ।।

॥ ओ३म् ॥

सच्चा ठिकाना

दीना बन्धु के दर पर जाना है।
मेरा और न कोई ठिकाना है॥

किस दर पर जा कर अर्ज़ करूं।
किस घर से खाली झोली भरूं।
चलता न कोई बहाना है।
मेरा और न कोई ठिकाना है॥

दुनियां में जो भी साथी हैं।
सब मतलब के ही नाती हैं।
अपना ही बनया बेगाना है।
मेरा और न कोई ठिकाना है॥

वोह दीन दुःखी की है सुनता।
प्रभु बिगड़ी में भी है बनता।
बस प्रभु से प्रेम बढ़ाना है।
मेरा और न कोई ठिकाना है॥

दीना बन्धु के दर पर जाना है।
मेरा और न कोई ठिकाना है॥

॥ ओ३म् ॥

जन्म-दिन

दर्शन प्यारे हो आंखों के तारे । वर्ष गांठ आज तेरी मनाएं ॥

बीत चुका तेरा सारा ही बचपन,
नई - नई शक्ति हो रही उतपन ।
सुन्दर सत्य भावों का हो आगमन,
वर्ष गांठ आज तेरी मनाएं ॥
प्रभु की कृपा से मिली है यह काया,
मात पिता पूर्ण योगी की छाया ।
धन माल संपत सब सुख पाया,
वर्ष गांठ आज तेरी मनाएं ॥
हमारे ही हृदय की आशाएं सारी,
तुझ पर ही निर्भर हैं दर्शन हमारी ।
करो प्रभु भक्ति होवे प्रेम भारी,
वर्ष गांठ आज तेरी मनाएं ॥
प्रभु की दया को ही दिल में धारो,
गायत्री मां की शक्ति से जीवन सुधारो ।
करो दीन सेवा सभी दुःख टारो,
वर्ष गांठ आज तेरी मनाएं ॥
तेरा नाम रखने का आदेश यही था,
जीवन बनाने का संदेश यही था ।
करो आत्म दर्शन उद्देश्य यही था,
वर्ष गांठ आज तेरी मनाएं ॥
दुनियां में कितनी ही सम्पत्ति पाओ,
समझो प्रभु की, सर को झुकाओ ।
नम्र हो दयाधार प्रभु गीत गावो,
वर्ष गांठ आज तेरी मनाएं ॥
चिर युग जीवो अमर होना जग में,
नाम धन का बीज बोना ही जग में ।
अश्वमेध यज्ञों को करना ही जग में,
वर्ष गांठ आज तेरी मनाएं ॥

दर्शन प्यारे हो आंखों के तारे । वर्ष गांठ आज तेरी मनाएं ॥

॥ ओ३म् ॥
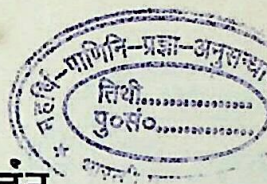
सातों दिन कीर्तन

ऐह वेला फिर हाथ न आना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो।
अन्त समय न हो पछताना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो॥

ऐतवार

ऐत ओखे न कोई होसी तेरा,
मेरे मन तू सोच विचार कर लै।
धन माल सारा ऐथे रह जाणां,
अपने जीवन दा कुछ सुधार कर लै॥

काम क्रोध ते लोभ दे विच फसिया,
डुब जाएगा कुछ विचार कर लै।
हीरा जन्म मिला अनमोल तैनूं,
सच्चे ओ३म् दे नाल प्यार कर लै॥

ऐह वेला फिर हाथ न आना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो।
अन्त समय न हो पछताना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो॥

सोमवार

सोम सुत्ता क्यों चादर तान के ते,
उठ ओ३म् दे गुण गा लै तू।
अमृत वेले नूं अमृत रस पी के,
अपना जीवन सफल बना लै तू॥

मोह माया दे जाल दे विच न फस,
कुछ उत्तम कर्म कमा लै तू।
हीरा जन्म मिला अनमोल तैनूं,
प्यारे ओ३म् नूं अन्दर बसा लै तू॥

ऐह वेला फिर हाथ न आना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो।
अन्त समय न हो पछताना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो॥

मंगलवार

मंगल मोह माया नूं त्याग मन वे,
सारे जगत दे नाल तू प्रेम कर लै।
ज़र्रा - ज़र्रा सृष्टी दा तैनूं शिक्षा देवे,
इस शिक्षा नूं दिल दे विच घर लै।।

बीता काल जांदा तेरे बस नहीं,
दुःख दुखियां दे तू दूर कर लै।
हीरा जन्म मिला अनमोल तैनूं,
शुभ कर्म ते सेवा ज़रूर कर लै।

ऐह वेला फिर हाथ न आना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो।
अन्त समय न हो पछताना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो।।

बुधवार

बुध बुद्धि दे विच सत्य भाव ले के,
ओ३म् सच्चे नूं सीस झुका मन वे।
स्वांस - स्वांस तेरा अनमोल जावे,
ऐंवै वकत न व्यर्थ गंवा मन वे।।

हीरे रतन जावन तेरे कौड़ी बदले,
अब समझ तू ओ३म् ध्या मन वे।
हीरा जन्म मिला अनमोल तैनूं,
मन मन्दिर दे विच बिठा मन वे।।

ऐह वेला फिर हाथ न आना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो।
अन्त समय न हो पछताना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो।।

वीरवार

वीर कर विचार तू मन मेरे,
परदा दुई दा अपना हटा दे तू।
हर इक नूं समझ तू आप जैसा,
भेद भाव नूं दिलों मिटा दे तू॥

प्राणी मात्र दे नाल तू प्यार कर लै,
सारा वैर विरोध हटा दे तू।
हीरा जन्म मिला अनमोल तैनूं,
सत्य ज्ञान दी ज्योत जगा दे तू॥

ऐह वेला फिर हाथ न आना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो।
अन्त समय न हो पछताना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो॥

शुक्रवार

शुक्र शुक्र करां आठों याम तेरा,
ओह है जग दा पालन हार स्वामी।
प्राणी मात्र दी ओह रक्षा करदा,
तेरे चरनां तो जावां बलिहार स्वामी॥

बिना मांगे वह सब कुछ देन हारा,
तेरा भरा भंडारा दातार स्वामी।
हीरा जन्म दित्ता अनमोल तैनूं,
डुबदे जीवां दा तारन हार स्वामी॥

ऐह वेला फिर हाथ न आना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो।
अन्त समय न हो पछताना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो॥

शनिवार

शनि छोड़ देवां मैं तां पाप सारे,
तेरे चरनां दा ध्यान रहे हर दम ।
तन बदन दी सुध न रहे मैंनूं,
मेरे दिल दे विच तू रहे हर दम ॥

बिना नाम तेरे मछली वांग तड़फां,
रोम - रोम दे विच तू रहे हर दम ।
हीरा जन्म दित्ता अनमोल तैंनूं,
मेरे नाल तू ओ३म् ही रहे हर दम ॥

ऐह वेला फिर हाथ न आना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो ।
अंन्त समय न हो पछताना, ओ३म् जपो हरि ओ३म् जपो ॥